विजयदेव नारायण साही के साहित्य का विश्ले णात्मक अध्ययन

An Analytical Study of the Works of Vijayad r Narayan Sahi

Thesis

Submitted to

Cochin University of Science and Technolo

for the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

वी. कुमारन

V. KUMARAN

Dr. M. Easwari
(Professor & Head)
Department of Hindi

Dr. N. M anan
(Reac)
Supervisin Teacher

DEPARTMENT OF HINDI

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOG

COCHIN 682 022

1998

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by Sri. **V. Kumaran,** Sr. Gr. Lecturer, under my supervision for Ph.D (Doctor of Philosophy) degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

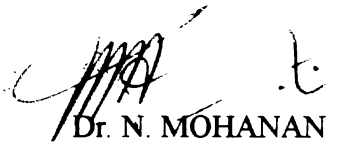

Dr. N. MOHANAN
(Supervising Teacher)
Reader
Dept. of Hindi
Cochin Universtiy of
Science & Technology
Kochi - 682 022.

Kochi - 682 022
27-06-1998.

DECLARATION

I here by declare that the work presented in this thesis is based on the original work done by me under the guidance of Dr. Mohanan, Reader, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin- 682022. and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any University.

Department of Hindi,
Cochin University of Science and Technology,
Cochin- 682022.

V. Kumaran
(Sr.Gr.Lecturer)

विजयदेव नारायण साही

विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पुरोवाक् — 1 - 10

पहला अध्याय — 11 - 44

विजयदेव नारायण साही का व्यक्तित्व-विश्लेषण

संक्षिप्त जीवन-वृत्त - साही-सामाजिक कार्यकर्ता - "नई कविता" में जगदीश गुप्त के साथ - क्रांतिकारी मानसिकता - बहस में विशेषज्ञ - परिमल का वातावरण - राजनीति और साही - सृजन के क्षेत्र में साही - मछलीघर - साखी - जायसी - साहित्य और साहित्यकार ि दायित्व - छठवाँ दशक - साहित्य क्यों - लोकतंत्र की कसौटियाँ - संवाद तुम से - वर्धमान और पतनशील - आवाज़ हमारी जायेगी - साहित्य के प्रति रुझान - आलोचक साही-घरेलू रिश्ता - कवि एवं कविता संबंधी मान्यता - व्यक्ति संबंधी दृष्टिकोण - अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता - समाज संबंधी मान्यता ।

दूसरा अध्याय — 45 - 63

साही का काव्य-चिन्तन आधुनिक हिन्दी कविता के संदर्भ में

विसंगतिबोध - मुक्ति की कामना - आधुनिक जीवन का तनाव - आधुनिकता ।

पृष्ठ संख्या

तीसरा अध्याय 64 - 85

साही का समाज चिन्तन और साहित्य

साही का समाज - साही और राजनीति - लोहिया का समाज-चिन्तन - कविता और समाज - समता के वक्ता साही - राजनीति और साही - साहित्य और समाज - निस्सहायता की अनुगूँज साहित्य में समसामयिकता ।

चौथा अध्याय 86 - 128

नई कविता के परिप्रेक्ष्य में साही की कवितायें

तारसप्तक का प्रकाशन - प्रयोग अर्थात् काव्य सत्य की खोज - विद्रोह की अनिवार्यता - बौद्धिक रुझान की प्रयोगवादी भूमिका - यथार्थ का कठोर धरातल- वैयक्तिक गहराई - शिल्प पक्ष की नवीनता - दूसरा सप्तक - आत्म वक्तव्य का मूल स्वर - तीसरा सप्तक - नई कविता - व्यवस्था का आतंक - संप्रेषणहीनता - मानवताबोध ।

पाँचवाँ अध्याय 129 - 158

समकालीन कविता प्रसंग और साही की कवितायें

अनावरण और आक्रमण - जीवन की समग्र स्वीकृति - "साखी" शब्द की अर्थ व्याप्ति - कविताओं का

पृष्ठ संख्या

विषयगत आधार - अनुरक्षा बोध - व्यंग्य - विद्रूपता - नाटकीय संवाद ।

छठवाँ अध्याय 159 - 191

साही की कविता का शिल्प-पक्ष

शिल्प की पूर्व पीठिका - काव्य भाषा - काव्य शैली- बिंब योजना - प्रतीक विधान - फैन्टसी-प्रयोग - नाटकीय संवाद ।

सातवाँ अध्याय 192 - 214

साही की आलोचना - दृष्टि

लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस - लघुमानव - महामानव - व्यक्ति संबंधी विचार - समाज संबंधी दृष्टि - साही का वक्तव्य - शील के रूप में - साही की आलोचना दृष्टि - जायसी - रचना का उद्देश्य - व्यक्तित्व विश्लेषण - कृतित्व विश्लेषण ।

उपसंहार 215 - 220

संदर्भ ग्रन्थ सूची 221 - 236

पुरोवाक्

पुरोवाक्

विजयदेव नारायण साही "तीसरा सप्तक" का प्रमुख कवि हैं । कवि के अलावा वे नई कविता का समर्थक, आलोचक तथा समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में बहुचर्चित हैं । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का उद्देश्य साही के साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है । कवि, राजनीतिक कार्यकर्ता एवं आलोचक के रूप में विजयदेव नारायण साही का जो अपूर्व व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य-जगत को संपुष्ट करता रहा उस पर वाँछित अध्ययन एवं विचार-विमर्श अभी तक नहीं हुआ है । अतः साही का साहित्य सचमुच गहन अध्ययन की माँग रखनेवाला अवश्य है । इसलिए "विजयदेव नारायण साही के साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन" शीर्षक विषय को इस शोध प्रबंध के लिए चुन लिया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सात अध्याय हैं ।

पहला अध्याय है "विजयदेव नारायण साही का व्यक्तित्व-विश्लेषण" । इस में साही के संक्षिप्त जीवन-वृत्त प्रस्तुत करते हुए उनके रचना-व्यक्तित्व की चर्चा की गई है । काफी अभावों से ग्रस्त पारिवारिक परिवेश में प्रारंभिक जीवन बिताने पर भी वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभागाध्यक्ष के रूप में तथा कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में मशहूर हो गए । "तीसरा सप्तक" से लेकर समकालीन कविता तक के विस्तृत रचना-क्षेत्र से साही का बहुत ही निकटतम संबंध है । हिन्दी काव्य-जगत में मार्मिक परिवर्तन को द्योतित करनेवाली नई कविता-धारा में लघुमानव याने आम आदमी के विसंगत यथार्थ को संप्रेषित करके साही ने अपना नाम बुलन्द कर दिया । समकालीन कविता के संदर्भ में भी नई काव्य-संवेदना को रूपायित करने में साही का योगदान विशेष उल्लेखनीय है । इस प्रकार साही के व्यक्तित्व में राजनीतिक तथा साहित्यिक व्यक्तित्व का अनोखा समन्वय हुआ है । राजनीति तथा साहित्य के क्षेत्र में एक साथ काम करते रहने के बावजूद उन्होंने कभी भी रचना को राजनीति में हावी होने नहीं दिया था । इस प्रकार इस अध्याय में साही के विशेष व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करने का कार्य किया गया है ।

"साही का काव्य-चिन्तन आधुनिक हिन्दी कविता के संदर्भ में - शीर्षक दूसरे अध्याय में साही के काव्य-चिन्तन पर विचार किया गया है । "मेरी कविता का आधार आस्था है" - कहकर साही ने आस्था को अपनी कविता को प्रेरक शक्ति मान ली । सचमुच उनकी कविता की आत्मा है आस्था । साही की कविता आस्था और अनास्था की कविता है तथा अनास्था के मँझधार में आस्था की तलाश करनेवाली कविता भी है । अनुभव और अभिव्यक्ति दोनों को अलग अलग माननेवाले कवि के लिए कविता का जन्म एक विशिष्ट या ठोस अनुभूति से होता है । अपनी कविता को राजनीति से जोड़े बिना साही ने काव्य-संबंधी जो नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है उसको इस अध्याय के अंतर्गत विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है ।

इस शोध प्रबन्ध का तीसरा अध्याय है, "साही का समाज-चिन्तन और साहित्य" । समाज-सापेक्ष व्यक्ति-चिन्तन पर ज़ोर देनेवाला कवि है साही । उन्होंने "तीसरा सप्तक" की भूमिका में अपने इस विशेष चिन्तन को स्पष्ट किया भी है । साही की दृष्टि में समाज की

व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जहाँ व्यक्ति को सभी प्रकार की स्वतंत्रता हो । अन्याय एवं अनास्था के युग में पले साही की समाज-संबंधी मान्यता का विशेष स्तर है । अपने समाज की असामाजिक वृत्तियों के प्रति घृणा प्रकट करते हुए, अपनी व्यक्ति-सत्ता पर ज़ोर देते हुए सामाजिक दायित्वों को निभाने में कवि प्रयत्नरत है । साही की राय है कि साहित्य कवि की अनिवार्यता है, व्यक्ति की नहीं । समाज के प्रति दायित्व व्यक्ति का है । वहाँ के यथार्थ की गहराई में पैठना तथा उसको दूर करने के प्रयत्न में भाग लेना एक व्यक्ति या नागरिक का प्रथम कर्तव्य है । पर कविता करना उनका दायित्व नहीं । वह साहित्यकार का धर्म है । वहाँ उसको प्रतिबद्ध होने की कोई ज़रूरत नहीं । उनकी राय में कविता या कला राजनीति के प्रचार का माध्यम नहीं । उसको स्वतंत्र रहना चाहिए । संक्षेप में, इस अध्याय में साही के समाज-चिन्तन को विश्लेषित करने की कोशिश की गयी है ।

इसका चौथा अध्याय है "नई कविता के परिप्रेक्ष्य में साही की कविताएँ" । साही की कविताओं का क्षेत्र-विस्तार 'तीसरा सप्तक' की कविताओं से लेकर समकालीन

कविता तक व्यापा हुआ है । "तीसरा सप्तक" की बीस कविताओं के बाद "मछलीघर" शीर्षक एक अलग संकलन का प्रकाशन 1966 में हुआ । उसके बाद 1983 में "साखी" और 1990 में "संवाद तुम से" काव्य-संकलनों का प्रकाशन हुआ । इन में "मछलीघर" नई कविताओं की मानसिकता का प्रस्फुटन है तो "साखी" और "संवाद तुम से" समकालीन कविता की प्रवृत्तियों का दस्तावेज़ है । इसके उपरांत गीत-गजलों का एक संग्रह "आवाज़ हमारी जायेगी" के नाम पर 1995 में निकला है । नई कविता में अभिव्यक्त आदमी की निस्सहायता, आधुनिक भावबोध, विसंगति का एहसास, अस्वतंत्रता की अनुगूँज जैसी प्रमुख प्रवृत्तियों का विस्तार समकालीन कविता में किस प्रकार हुआ है, उसकी मानसिकता की विवृत्ति कैसे हुई है जैसे पहलुओं की चर्चा अनिवार्य बन गई है । व्यवस्था का आतंक, अजनबीपन, संप्रेषणहीनता जैसी समकालीन कविता की प्रवृत्तियों को साही की कविताओं में किस प्रकार रूपायित किया गया है - ये सारी बातें इस अध्याय में चर्चित है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का पाँचवाँ अध्याय है - "समकालीन कविता-प्रसंग और साही की कवितायें । "मछलीघर" के प्रकाशन के लम्बे अन्तराल के बाद 1983 में प्रकाशित "साखी" और 1990 में निकले "संवाद तुम से"

की कविताओं के आन्तरिक पर्तों का विश्लेषण इस अध्याय का विषय रहा है । समकालीन संदर्भ में व्यक्ति-समाज, घटना-परिस्थिति आदि को अपनी कविता में परिभाषित करने का जो कार्य साहो ने किया है, उसको इस अध्याय में जाँचने की कोशिश की है । समकालीन कविता के क्षेत्र में साहो का विशेष स्थान निर्धारित करने का कार्य भी इस अध्याय का लक्ष्य रहा है ।

"साहो की कविता की शिल्प-प्रवृत्तियाँ" प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का छठा अध्याय है । यह सुविदित है कि कविता की चर्चा कथ्य और शिल्प के साथ ही पूर्ण हो जाती है । छायावादोत्तर कविता परंपरा का ग्रहण एवं निषेध की कविता है । वह परंपरा से कुछ अंशों को स्वीकार करते वक्त अधिकांश को नकारती है । अपने रूपबन्ध की प्रयोगशीलता में उसमें अस्वीकार का भाव ज़्यादा है । कविता के अनुभूत्यात्मक धरातल पर आए परिवर्तन के अनुसार शिल्प में भी नवीनता आना स्वाभाविक है । साही की कविता अपने चिन्तन के मौलिक स्तर का संस्पर्श करने के साथ ही एक नए शिल्प-क्रम को स्वीकार करती है । फैन्टसी-प्रयोग, संवाद शैली, वार्तालाप की सरलता आदि के द्वारा काव्य का सरल संप्रेषण साहो के काव्य की नूतनता ही है । यह नवीन शिल्प-क्रम ही पाठकों को उनकी रचना की ओर आकर्षित करता है ।

सातवाँ याने अन्तिम अध्याय "साही की आलोचना दृष्टि" है । साही की आलोचना-पद्धति पर आधारित है प्रस्तुत अध्याय । संख्या में कम होने के बावजूद साही की आलोचना कई विषयों पर नितान्त नई मानसिकता बरतनेवाली है । हिन्दी कविता में लघुमानव की प्रतिष्ठा, सूफी सन्त जायसी का व्यक्ति एवं कवि जायसी के रूप में प्रस्तुतीकरण आदि साही के आलोचक-व्यक्तित्व की नई उपलब्धियाँ ही हैं । हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में साही का दृष्टिकोण अद्वितीय है । पत्रिका के संपादक के रूप में भी साही ने अपने आलोचक-व्यक्तित्व का परिचय दिया है । संक्षेप में कवि तथा राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में ही नहीं सही आलोचक के रूप में भी साही का व्यक्तित्व उल्लेखनीय है । इस अध्याय में साही के आलोचक-व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को पकड पाने का प्रयास किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्व-विद्यालय कोचीन के हिन्दी विभाग के रीडर डा॰ एन॰ मोहनन् के निर्देशन में संपन्न हुआ । उनकी विद्वतापूर्ण सुझावों के कारण ही मैं यह कार्य पूरा कर सका हूँ । मैं डा॰ एन॰ मोहनन् के प्रति सदा आभार हूँ ।

इस शोध-कार्य को संपूर्ति में हिन्दी विभाग के प्रोफ़सर डा. अरविन्दाक्षनजी ने काफी सहायता दी है । उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

सरकारी महिला कलालय कण्णूर के मेरे प्रिय मित्र एवं सहयोगी अंग्रेज़ी अध्यापक श्री. सी. के. अशोक वर्मा का स्मरण मैं इस संदर्भ में कर रहा हूँ क्योंकि उन्होंने भी इस शोधकार्य की पूर्ति में काफी सहयोग दिया है । उनके प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ ।

विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कोचीन के हिन्दी विभाग की अध्यक्षा प्रो. डा. एन. ईश्वरी तथा अन्य गुरुजनों के प्रति भी मैं आभार हूँ कि वे इस शोध-कार्य की संपूर्ति के लिए निरन्तर प्रोत्साहन देते रहे हैं ।

विजयदेव नारायण साही की सुपत्नी एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग के रीडर श्रीमती कंचनलता साही का नाम भी इस अवसर पर विशेष स्मरणीय है । इस शोध कार्य के कठिन संदर्भों में उन्होंने काफी सहायता दी है ।

मैं हिन्दी विभाग के सभी शोध छात्रों तथा मेरे अन्य मित्रों से अपनी आभारी व्यक्त करता हूँ जिन्होंने समय समय पर मेरी मदद की है और जिनकी सहृदयता का लाभ मैं ने उठाया भी है ।

हिन्दी विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा के प्रति तथा सहायक के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने पुस्तकालय के सदुपयोग के लिए निर्लोभ सहयोग दिया है ।

अन्त में मैं बड़ी विनम्रता के साथ यह शोध प्रबन्ध सहृदय विद्वानों के सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ । इसकी गलतियों एवं कमियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ ।

सविनय,

वी. कुमार

हिन्दी विभाग
विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोचीन - 682022.

25.06.1998.

पहला अध्याय

विजयदेव नारायण साही का व्यक्तित्व विश्लेषण

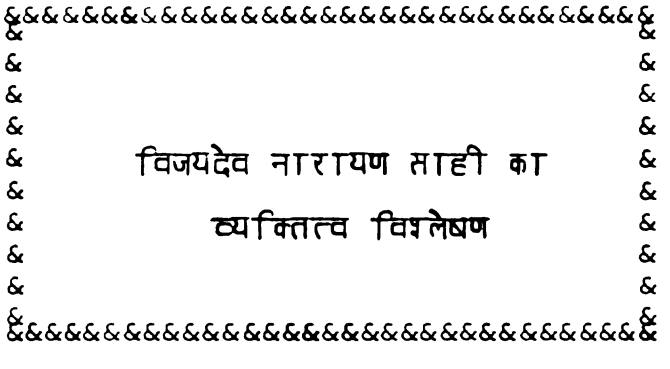

पहला अध्याय

विजयदेव नारायण साही का व्यक्तित्व-विश्लेषण

रचनाकार का आत्यान्तिक लक्ष्य क्या है ? युग युगों से इसकी चर्चा होती आ रही है । किसी निष्कर्ष पर पहुँच पाना कठिन कार्य भी है । फिर भी वाल्मीकी से लेकर अधुनातन साहित्यकारों की सृजनात्मकता का अन्वेषण हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए विवश कर डालता है कि रचनाकार का धर्म अपने समय के साथ प्रतिक्रिया करना ही है । यह सुविदित तथ्य है कि रचनाकार क्रान्तदर्शी होता है । वे जन साधारण के चक्षुओं को, जो अप्राप्य है या अदृश्य है, प्राप्य या दृश्य बनाने का महान कार्य करनेवाले हैं । जहाँ कहीं अन्याय, अत्याचार एवं विषमता वर्तमान है वहाँ रचनाकार अपनी लेखनी के माध्यम से इन अमानवीय वृत्तियों के विरुद्ध विद्रोह करता है । यह विद्रोह ही उसका साहित्य है । कला के संदर्भ में विभिन्न कलायें इसका ही साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं ।

वाल्मीकी ने अपने समय के साथ प्रतिक्रिया करते हुए आदर्श समाज के लिए आवश्यक तत्वों को गढ़ने का महान कार्य किया । उनके सृजन के पीछे परंपरा एवं संस्कृति का सही अवबोध, वर्तमान की गहरी पहचान तथा भविष्य का स्पष्ट चित्र है । इसलिए उनकी रचना कालजयी बन गयी है । यह मात्र वाल्मीकी के संदर्भ में ही नहीं

हर युग के साहित्यकारों ने या कलाकारों ने अपने समय से टकराते हुए अपनी सृजनात्मकता का सही परिचय प्रस्तुत करने का कार्य किया । उनका साहित्य ही समाज को कुछ दे सका है और कालसीमा का उल्लंघन कर सका है ।

कबीर, तुलसी, जैसी प्रतिभा इसके लिए आज भी प्रासंगिक है कि उन्होंने अपने समय के साथ सही ढंग से प्रतिक्रिया की थी । या यों कहिए कि अपने समय ने इन्हें प्रतिक्रिया करने के लिए विवश कर दिया था । इसलिए उनकी रचना संबंधी मानसिकता के रूपायन के पीछे अवश्य अपने युग के यथार्थ की भूमिका निर्विवाद की है । हिन्दी साहित्य में यह परंपरा निराला, मुक्तिबोध, धूमिल से होकर आगे बढती है । यद्यपि विजयदेव नारायण साही मार्क्सवादी चिन्तन का अनुयायी नहीं थे फिर भी उनका दृष्टिकोण विपक्ष का रहा है । वे निसन्देह अपने समय के साथ संघर्ष करनेवाला रचनाकार अवश्य हैं । मनुष्य को मनुष्य के रूप में जीने के अधिकार के लिए संघर्षरत व्यक्तित्व है साही का । सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक एवं धार्मिक असंगतियों के खिलाफ खुल्लमखुल्ला विद्रोह करनेवाले साही का साहित्य संबंधी दृष्टिकोण अपने युग-यथार्थ से रूपायित अवश्य है । इसलिए उनके वैयक्तिक जीवन के तथ्य-विश्लेषण के बिना साहित्यिक मानसिकता के पीछे सक्रिय खास तत्वों को पकड पाना नामुमकिन होगा ।

संक्षिप्त जीवन-वृत्त

विजयदेव नारायण साही का जन्म 7 अक्तूबर 1924 में काशी में हुआ।[1] उसका परिवार आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ नहीं था। विभिन्न प्रकार के अभावों से ग्रस्त परिवार में ही साही का जनम हुआ। इसलिए प्रारंभिक जीवन अपनी पारिवारिक कटुता के बीच ही व्यतीत हुआ। सन् 1948 में उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। इसके उपरान्त कुछ वर्ष तक काशी विद्यापीठ में अध्यापक रहे। सन् 1970 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग के रीडर और 1978 में वहाँ के प्रोफ़सर बने। एक साहित्यकार, समाजवादी चिन्तक तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी प्रोफ़सर के रूप में उनका नाम काफी विख्यात है। इसी बीच 1973 में उन्होंने भारत सरकार के कलचरल रेप्रसन्टेटीव बनकर युगोस्लाविया में "वेल्ड पोयट्री फेस्टिवल" में भारतवर्ष का प्रतिनिधित्व किया और विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में विविध विषयों पर भाषण भी दिये। 5 नवंबर 1982 में हृदगति के रुक जाने के कारण इलाहाबाद में साही जी का असामयिक निधन हुआ।

---

1. धर्मयुग नवंबर 1982 - धर्मवीर भारती - पृ. 17

साही - सामाजिक कार्यकर्ता

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के शैक्षणिक वातावरण में क्रियाशील रहने के अलावा विजयदेव नारायण साही का, समाज में, बहुत विशाल दायरा रहा था - "कम्युनिस्ट प्रगतिवाद ने साहित्य में किसान-मज़दूर का हल्ला मचाया । उस से प्रभावित होकर मज़दूरों के बीच गया । तब से ट्रेड यूनियनों में काम करते दस वर्ष हो गये । पाया कि कम्युनिस्ट प्रगतिवाद ने केवल ऐसे लोग पैदा किये जो मज़दूर नेताओं में साहित्यकारों जैसी बातें करते हैं, साहित्यकारों में मज़दूर नेताओं जैसी ; जहाँ दोनों न हो वहाँ दोनों जैसी और जहाँ दोनो हो वहाँ बगलें झाँकने लगते हैं ।"[1] कांग्रेस शासन में साही तीन बार जेल गये । तीनों बार विरोध-प्रदर्शन करने में गिरफ्तार हुए । विरोध चाहे अन्याय का हो, चाहे संकीर्णता का और चाहे सत्ता का । उन्होंने नेहरू की कार के आगे काला झण्डा लेकर किसानों का पक्ष लेकर अड़ गये । साही की "दे दे इस साहसी अकेले को" शीर्षक कविता कुछ ऐसे अनुभवों की संचित राशि की उपज है -

"दे दे रे
दे दे इस साहसी अकेले को एक बूँद
ओ सन्ध्या
ओ फकीर चिड़िया

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - पृ. 273-274

ओ रुकी हुई हवा
ओ क्रमशः तर होती हुई जाडे की नर्मी
ओ आस पास झाडों झंखाडों पर बैठ रही आत्मीयता
कैसे ? इस धूसर परीक्षण में पंख खोल
कैसे जिया जाता है ?
कैसे सब हर त्याग
बार बार जीवन से स्वत्व लिया जाता है ?
कैसे किस अमृत से
सूखते कपाटों को चीर चीर
मन को निर्बन्ध किया जाता है ?
दे दे इस साहसी अकेले को ।"[1]

साही ने इस मामले में आचार्य नरेन्द्र देव और डा. राममनोहर लोहिया से सीधी प्रेरणा पायी साथ ही साथ उनका निजी अनुभव और अध्ययन उसका संपोषक रहा ।

साही की वैचारिक सक्रियता भी काफी उल्लेखनीय है । एक बार 1973 में हिन्दी के तरुण कलाकारों द्वारा आयोजित "आचार्य नरेन्द्रदेव अभिनन्दन" की एक योजना बनी जिसमें धर्मवीर भारती,

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 5।

हरदेव बाहरी जैसे मर्मज्ञ विद्वानों के साथ साही भी शामिल हुए थे । अगर साही एक ओर उस समय के कालीन-बुनकरों और श्रम-जोवियों के अपने अधिकार दिलाने के लिए हाई कोर्ट व सुप्रीम कोर्ट तक स्वयं लड़ाई करते थे तो दूसरी ओर साहित्य और संस्कृति के नये प्रतिमानों की खोज में निरन्तर लगे रहते थे । इसी बीच सोशलिस्ट पार्टी के शिक्षण-शिविरों में बराबर भाग लिया । लोहिया-जयप्रकाश-जयन्ती पर भाषण देते रहे । विदेश यात्रा के दौरान "भारत सरकार के सांस्कृतिक प्रतिनिधि की हैसियत से स्ट्रगा वर्ल्ड पोयट्री फेस्टिवल में भाग लिया । फिर उलान बटोर, लेनिन ग्राड, प्राहा, वारशावा, हैम्बुर्ग, हाइडलबर्ग के विभिन्न विश्वविद्यालयों में कन्टम्पररी इंडियन कल्चर एन्ड लिटरेचर एन्ड द इम्पैक्ट आफ द वेस्ट" विषय पर भाषण दिये ।"[1] अत: देश-विदेश में साही की सक्रियता की बड़ी ख्याति रही है ।

"नई कविता" में जगदीश गुप्त के साथ

"नई कविता" पत्रिका के प्रकाशन में साही जगदीश गुप्त के साथ काफी समय तक व्यस्त रहे थे । गुप्तजी स्वयं कहते हैं "साही का सदभावनापूर्ण सहयोग "नई कविता" में मुझे पहले अंक से ही सुलभ रहा किन्तु सह-संपादक के रूप में वे मेरे साथ 1956 से आये ।"[2] नई कविता

---

1. वर्धमान और पतनशील - विजयदेवनारायण साही - आवरण पृष्ठ से
2. पूर्वग्रह-65 - सं. अशोक वाजपेई - जगदीश गुप्त का लेख - पृ. 90

में साही की कवितायें अनेक अंकों में छपी । जगदीश गुप्त के "अर्थलय" विषयक लेख को जब साही ने विस्तार से देखा-परखा-बहसा तब जगदीश गुप्त को मालूम हुआ कि कविता की समझ साही में रामस्तरूप से कहीं अधिक है । "अर्थलय" की बातों पर जब साही सहमत हुए तभी गुप्त को बल मिला था । बिम्ब के मामले में भी साही से उनको पूरा समर्थन मिला था ऐसा कहता है, "साही इसी पृष्ठभूमि में मेरे साथ आ गये और "नई कविता" के तीसरे अंक से आठवें अंक तक (1956 से 1968 तक) बराबर सहयोगी बने रहे ।"[1] नई कविता में प्रकाशित साही की "हम सभी बेचकर आए हैं अपने सपने" (अंक-2), "विषकन्या के नाम" (अंक-4), "एक छोटी सी बेसब्री" (अंक-5) जैसी कवितायें काफी नामी एवं चर्चित बन गयीं । नई कविता के इसी अंक में साही का सुप्रसिद्ध एवं लम्बा लेख "लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस" छप्पा था जो छप्पन पृष्ठों तक व्यापा है । इसके उपरान्त नई कविता के सातवें अंक में साही की कई कवितायें एक साथ छपी, तल्लीन मन और आलोकित संध्या, अन्धेरे गोलार्ध की एक रात, मछलीघर, सिन्दवाद की यात्रा आदि उनमें से कुछ हैं । साही का कवि-व्यक्तित्व इन कविताओं से पर्याप्त शक्ति के साथ सामने आ गया । नई कविता के आठवें अंक में साही परोक्ष रूप में ही उपस्थित रहे । जब हिन्दी की हर पत्रिका और हर पत्र में नई कवितायें छपने लगीं, उन्हें व्यापक स्वीकृति मिली, तब "नई कविता" ने अपने उद्देश्य की पूर्ति की और संपादक को लगा

---

1. पूर्वग्रह-65 - सं. अशोक वाजपेई - पृ. 92

कि 1968 के बाद पत्रिका के प्रकाशित करने की ज़रूरत नहीं । अत: पत्रिका-प्रकाशन और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में साही एवं गुप्तजी का सम्मिलित सहयोग काफी समय तक रहा है ।

क्रान्तिकारी मानसिकता

साही ने जब लिखना शुरू किया था तब तक विचारधारा हिन्दी साहित्य में आतंक जमाना शुरू कर चुकी थी । अत: साही की रचना स्वयं क्रान्ति का पर्याय बनती गयी । परिणाम स्वरूप क्रान्ति तो नकली हो ही गयी थी, रचना के भी नकली होते जाने की पूरी संभावना बन गयी थी । चूँकि क्रान्ति करने के लिए उन्होंने राजनीति अपना रखी थी इसलिए उम्मीद की जा सकती थी कि उनकी रचना का उत्स भाववादी होगा । साही रचना का इस्तेमाल विचार प्रकट करने के लिए ही करते हैं । प्रारंभिक काल में, विशेषकर आचार्य नरेन्द्र देव के प्रभाव के पहले साही मार्क्सवादी है । इसलिए उनके प्रारंभिक निबन्धों में मार्क्स के प्रति जो आदर-भाव पाया जाता है वह बाद में देव और लोहिया से संशोधित किये जाने के कारण अन्तर्गुप्त दृष्टि के रूप में उनमें विद्यमान है । "साही जी मार्क्सवाद को यांत्रिकता से बचने का आग्रह करते हैं और मार्क्सवाद को केवल राजनैतिक कसौटी मानकर साहित्य के लिए मानव-मूल्यों

को दूसरी कसौटी आवश्यक मानते हैं ।"[1] यह मानव-मूल्यों की कसौटी क्रमशः प्रमुख होती जाती है और राजनैतिक कसौटी लेखन में कम्युनिस्ट परिणति के कारण गौण होते होते समाप्त हो जाती है । उसी प्रकार अज्ञेय के "अर्थवान शब्द" को अपेक्षा साही "मानवीय मूल्यवत्ता" को प्रमुखता देते हैं । अज्ञेय और साही में यही अन्तर भी, "साही का प्रस्थान-बिन्दु मनुष्य है, अज्ञेयजी का अभिव्यक्ति है । साही मार्क्स से शुरू करते हैं और अज्ञेय फ्रायड से ।"[2] वस्तुतः दृष्टियों का यह अन्तर रचना एवं आलोचना में स्पष्ट दिखाई पड़ता है तथा आचरण में भी । अतः यों कहिए विजयदेव नारायण साही की क्रान्तिकारी मानसिकता इन सब को मिली-जुली हैसियत से रूपायित है ।

बहस में विशेषज्ञ

विश्व विद्यालय में अध्यापन का कार्य करनेवाले विजयदेव नारायण साही के व्यक्तित्व का और एक पहलू अपनी बहस करनेवाले चेहरे से ज़ाहिर हो जाता है । विषय कोई भी हो, साही की बहसें एक विशेष प्रभाव उत्पन्न करनेवाली है । विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए साही द्वारा स्वीकार किया गया एक तरीका अपनी

---

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य - राम विलास शर्मा - पृ. 405
2. आलोचक और समीक्षायें - डा. सत्यप्रकाश मिश्र - पृ. 40

बहस ही है । इसीलिए शायद अपने समकालीन कवि कुंवर नारायण ने कहा होगा -"विचारों को अभिव्यक्ति देने का उनका प्रमुख माध्यम उनकी बहस-शैली थी, लगभग उन्हीं अर्थों में जिनमें सुकरात के विचारों की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम उनकी "संवाद-शैली" थी ।"[1] कहने का मतलब है कि साही की बहसें उनके लेखों या व्याख्यानों में सीमित नहीं होती, लगातार उनका उल्लंघन और अतिक्रमण करती है । मार्क्सवाद, धर्म-निरपेक्षता, लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता, साहित्यकार का दायित्व जायसी आदि पर उन्होंने जो व्याख्यान दिया है वे सब अपने विषय की सीमा के बाहर छलकनेवाले थे । वे अच्छी तरह जानते थे कि किसी भी बहस के दो या दो से अधिक दल बन जाना स्वाभाविक है जिनके बीच समझौता लगभग असंभव होता । क्योंकि हर व्यक्ति तब अपने पक्ष का प्रवक्ता बन जाता है, सच्चाई का नहीं । "अपनी बहसों के दौरान साही अनेक अपूर्ण और विचारोत्तेजक वाक्यों और प्रस्तावों को छोड जाते थे मानो अगली बहसों का मुद्दा बनाते हुए ।"[2] राजनीतिज्ञ होते हुए भी साही आदर्श और यथार्थ के बीच समझौता नहीं कर सके - यह उनका सबसे बडा गुण मानना ही है । सच्चे अर्थ में साही की बहसें उनके जीवन-विवेक की अभिव्यक्ति थी । लघुमानव, जायसी आदि मार्मिक विषयों पर साही ने जो बहसें की है वे बिलकुल अद्वितीय एवं अपने ढंग में निराला ही है । क्योंकि,

---

1. पूर्वग्रह-65 - सं. अशोक वाजपेई - कुंवर नारायण का लेख - पृ. 53
2. पूर्वग्रह -65 - सं. अशोक वाजपेई - पृ. 53

"जायसी के निरालेपन को, सामाजिक-ऐतिहासिक दृष्टि से भी उनकी प्रासंगिकता को रेखांकित करने के लिए यह बहस सही जान पड़ती है । दूसरों से बहस करनेवाली कई ऐसी पंक्तियों को उन्होंने अपनी कृतियों में शब्दबद्ध किया है जिन के कारण काव्य-शिल्प और सरल बन गया है । बहस करने की यह रीति समकालीन कविता को भी है जो एक नवीनतम शिल्प-प्रक्रिया है जिसमें साही ने भी अपना योगदान दिया है,

"मुझे देखो
यह कि पूँजीभूत मैं अब भी बचा हूँ आज ।
मुझे देखो
यह कि इस दिशा हीनता को भेंटता-सा
जगमगाता हुआ मैं अस्तित्व हूँ निर्व्यज ।"[1]

यह साही की बहस शैली में प्रस्तुत की गई एक कविता है । अतः साही की बहसों की ख्याति अपने व्यक्तित्व एवं पांडित्य को और उजागर करनेवाली है ।

किसी देश के साहित्यिक इतिहास में ऐसी विलक्षण प्रतिभा और समझ वाले व्यक्ति विरले होते हैं - यह किसी एक कारण से नहीं, साही के संबंध में ऐसा कहना अनेक कारणों से है । साही ने

---

1. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 68

अनेकानेक माध्यमों से अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की, लेकिन साहित्यिक एवं संचार माध्यमों के ज़रिए अपने यश का प्रभामण्डल बनाने की कोशिश साही की प्रकृति में बिलकुल नहीं है । काशी विद्यापीठ से वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग में आने के उपरान्त वहाँ रहना, पढना-पढाना पसन्द करने से ज़्यादा ख़ुशी उन्हें परिमल के साहित्यिक परिवेश में जीने के अवसर प्राप्त होने से मिली थी । "परिमल के साहित्यिक परिवेश में जीना और अपने में निरन्तर नया जोड़ते रहना साही के साहित्यिक अनुभव की समृद्धि का अजस्र स्रोत बना रहा ।"[1] वास्तव में परिमल वहाँ का एक साहित्य प्रतिष्ठान था ।

"परिमल" का वातावरण

1944-48 का समय साही के संबंध में साहित्यिक उमंग का समय था जो परिमल का शैशव काल भी । "परिमल" की गोष्ठी में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अनेक रचना-धर्मी छात्रों के साथ कुछ अध्यापक भी शामिल होते थे । छात्रों में साही के अलावा जगदीश गुप्त, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, गिरिधर गोपाल, गोपेश, धर्मवीर भारती, क्षेम, महेन्द्र, रघुवंश जैसे सब उस से जुड़े रहे थे । फिर "परिमल" में सुमित्रानन्दन पंत, निराला और महादेवी का

---

1. साहित्य और साहित्यकार का दायित्व - साही - पृ. 11

सान्निध्य प्राप्त हुआ था । इन सब के कारण एवं इसके फलस्वरूप साहित्य के रचनाधर्मी आन्दोलनों का नया दौर "परिमल" की बैनर पर लगभग बीस बरस चलता रहा । इसलिए हिन्दी कथा साहित्य, हिन्दी काव्यधाराएँ, सन्त साहित्य, आधुनिकता के नव-आन्दोलन, प्रगतिवादी मूल्य, नाटक और रंगमंच आदि विषय पर परिमल की गोष्ठियों में विचार-विमर्श का दौरा चला आया । इन गोष्ठियों के आयोजन को जीवन्त रचना-धर्मिता से जोडनेवाले प्रमुख व्यक्तियों में से विजयदेव नारायण साही का नाम सब से आगे हैं । "साहित्य क्यों" शीर्षक अपनी रचना में साही ने बडे तात्विक रीति से "परिमल" की रजत-जयन्ती के अवसर पर रचना-धर्मिता के सार्थक मुद्दे उठाये थे । साथ ही साथ "आलोचना" पत्रिका के संपादन के दौरान उनकी लिखी हुई संपादकीय टिप्पणी, विवेचना, हिन्दी की महत्वपूर्ण पुस्तकों पर की गई समीक्षायें सब साही के व्यक्तित्व को चमत्कृत कर देनेवाली अभिव्यक्तियाँ हैं । अत: साही के संबंध में यह दोहराना पडता है कि उनकी दृष्टि समग्रता पर हमेशा थी । इस समग्र-बोध में रचना-धर्मिता के चार स्तर भी वे मानते हैं -

(1) "पहली बात तो यह है कि साहित्य का दायित्व जोड़ने का है और बडे से बडे संकट के क्षणों में भी मानव-मूल्यों और रागात्मक अनुभूतियों को संगृहीत करके सुरक्षित रखने का है । यह काम शेक्सपीयर, तालस्टाय, वाल्मीकी, तुलसीदास आदि सभी रचनाकारों ने अपने स्तर पर किया है । यदि वे यह न करते तो मानव-निष्ठा के वे आयाम, जो हमें दिखलायी पड़ते हैं, आज सुरक्षित न रह पाते ।"

§2§ "साहित्य का दूसरा दायित्व रागात्मक स्तर पर मानव-अनुभूतियों की विविधपरता के अनेकानेक रूपों के प्रति आस्था विकसित करना है । यह आस्था ही वास्तव में एकीकरण का काम करती है ।"

§3§ "साहित्य का तीसरा दायित्व मानव-जीवन के प्रति भावात्मक संवेदना को निरन्तर नि:सृत करना है, ताकि रागात्मक और जोड़ने की प्रक्रिया अमानवीय होने से बचती रहे ।"

§4§ "चौथी बात नितान्त स्थानीय मानव और विश्व मानव के तनाव संघर्ष के विलयन की है, जिसमें आकांक्षा और यथार्थ के विभिन्न पक्षों को सृजन का प्रेरणास्रोत माना जा सकता है।"[1] साही की कविता को समझने के लिए भी उनके चिन्तन की उपरोक्त रचनात्मकता की ज़रूरत है क्योंकि साही का चिन्तन इस से निरपेक्ष नहीं है । अत: साही के चले जाते ही वहाँ एक खालीपन छा जाता है ; मात्र वहाँ ही नहीं सब कहीं यह खालीपन का एहसास होता है -

"मेरे जाते ही
यहाँ जहाँ मैं खड़ा हूँ
तुम्हें एक खोलपन का एहसास होगा ।"[2]

---

1. राष्ट्रभाषा सन्देश - अक्तूबर 1982
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 120

वाली उनकी पंक्तियाँ इस संदर्भ में और अधिक प्रासंगिक बन जाती है । इस प्रकार कविता में साही का उल्लेख करना स्वाभाविक है और वह ज़रूरी भी, पर कहानी, एकांकी, अनुसन्धान और अनुवाद अनेकानेक क्षेत्रों में भी उनका नामोल्लेख हैं । "हरसिंगार" नामक कहानी-संग्रह में उनकी भी कहानी रही हो यह संभव है क्योंकि कहानीकार के रूप में उनका नाम लक्ष्मीनारायण लाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और धर्मवीर भारती आदि के साथ ही गिनाया गया है । "गुनाहों का देवता" उपन्यास साही द्वारा रेडियो नाटक के रूप में प्रस्तुत किया गया था । पंतजी के निर्देशन में "उसने कहा था" कहानी को एकाँकी में रूपान्तरित करके जो मंच प्रस्तुति की गयी थी उसमें रघुवंश, भारती, गोपेश और साही सभी ने मिलकर अभिनय किया । विजयदेव नारायण साही ने अपने अनुसन्धान के लिए "अंग्रेज़ी आलोचना का हिन्दी आलोचना पर प्रभाव" विषय चुना था । इस कार्य को ज़ारी रखते हुए सौ से अधिक आधुनिक हिन्दी कविताओं को अंग्रेज़ी में रूपान्तरित करने के काम में साही लगे हुए थे । शोधकार्य संबंधी सभी काम पूरा न कर सकने के बावजूद इन दिशाओं में उनकी सक्रियता निरन्तर बनी रही यह उनके संबंध में स्तुत्य कार्य ही है ।

साही असली आदमी की कदर करते थे चाहे वह आधुनिक हो या दकियानूसी । वे कृतज्ञता का मूल्य माननेवाले थे ।

उनके सामने आज दुनिया कृतज्ञ रहने का भी यही कारण है । साही में गहरा समुदाय-बोध भी है । सौभाग्य से वह निरा ऐतिहासिक या समाजशास्त्रीय नहीं है । उसमें एक कबीले के होने उसके सौभाग्य-दुर्भाग्य से तादात्म्य होने का अचूकपन है । लोग साही के यहाँ अमूर्त सामान्यीकरण नहीं बनते । साही ने लिखा हैं -

कहाँ चले जाते हैं लोग
थोडी देर के लिए
आदिम पीडाओं की झलक दिखलाकर
थोडी देर के लिए
आदिम वैराग्य की खुशबू छोड़कर[1]

कविताओं में उसकी उपस्थिति का एहसास अभिव्यक्तियों के माध्यम से तो होता ही है, उससे कहीं अधिक उन अन्तर्ध्वनियों से होता है जो उनकी बहुत सारी कविताओं में गूँजती हैं,

"ऐसा नहीं है
कि वहाँ लोग नहीं होंगे
हमें सोता देखकर वे आयेंगे

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 12

और जागने पर हालचाल पूछेंगे ।
हम उन से कहेंगे
कि हम भी उनके साथ कान्तारों में
गुमनाम होने के लिए आए हैं ।[1]

इन ध्वनियों से कविता समकालीन विषय या चरित्र पर होकर भी इतिहास को अपनी परिधि में समेट लेती है । बल्कि साही के यहाँ इतिहास अज्ञात नहीं, गुमनाम है । इस गुमनामी से ही आज के व्यक्ति के लिए "नई शुरूआत" की संभावना बनती है । "कविता इतिहास को उसके "नाम" से मुक्त कर जो "गुमनामी" उसे देती है वह उसे अधिक मानवीय, अधिक व्यापक बना देता है ।"[2] कविता सिर्फ भाषा की नहीं, इस मानवीय निरन्तरता और तात्कालिकता की भी रचना करती है । कविता से हम ऐसे पुरुषार्थ की आशा नहीं करते साही की कविता उसे पूरा करती है ।

राजनीति और साही

युवावस्था से साही तात्कालीन राजनीति के साथ जुड़े रहे । इस सिलसिले में इन्हें तीन बार जेल जाना भी पडा । 1966 के

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 8।
2. पूर्वग्रह अंक-65 - सं. अशोक वाजपेई - अशोक वाजपेई का लेख - पृ. 72

चुनाव में साही ने मिर्जापुर से लोकसभा के लिए चुनाव लडे । उस समय कालीन बुनकरों को संगठित करके यूनियन बनायी । आगे भी उनके लिए तथा उनके जैसे अन्य मज़दूरों की भलाई के लिए वे लडाई लडते रहे । उस समय साही कानून की पुस्तकें पढकर मज़दूरों के मुकदमों के लिए हाईकोर्ट से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक लडते थे और जीतते थे । इस कार्य में वे अपने कार्यकर्ताओं को विशेष रूप से प्रशिक्षण भी देते थे । वे सोशलिस्ट पार्टी के शिक्षण-शिविरों में बारम्बार शिक्षण-भाषण देते थे और लगातार सम्मेलनों में भाग लेते थे । साही का आत्ममित्र जगदीश गुप्त के शब्दों में "राजनैतिक क्षेत्र में अवश्य वे सब से आगे थे और यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि उन से पर्याप्त प्रेरणा ली है, मित्र के नाते मैं ने विशेषत: ।"[1] साही आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण और राम मनोहर लोहिया के विचारों से प्रभावित थे । इन्हीं के विचारों के तहत पर उन्होंने अपनी एक अलग चिन्तन-पद्धति को रूपायित किया था । "राजनीति, साहित्य, संपूर्ण क्रान्ति, लोकतंत्र, जनतंत्र, समाजवाद और शिक्षा के सभी संदर्भ लोहिया की विचारधारा के साथ समन्वित साही जी की निजी व्याख्या एवं स्वतंत्र चिन्तन का प्रमाण है"[2] - यही गुप्तजी का मत है । वास्तव में साही का जीवन बिलकुल सामान्य था । पर चिन्तन और लेखन सौ फीसदी असामान्य । लोहिया की भारतीय मानस की समझ, जूझने का अदम्य अकेला साहस, कर्मठता और संकल्प ने साही के मन में उनके प्रति एकात्मनिष्ठ-आकर्षण पैदा किया । लोहिया के वे सारे गुण साही में नई दीप्ति के साथ प्रतिभासित हुए हैं ।

---

1. लोकतंत्र की कसौटियाँ - विजयदेव नारायण साही - जगदीश गुप्त की भूमिका - पृ. 8
2. लोकतंत्र की कसौटियाँ - विजयदेव नारायण साही - जगदीश गुप्त की भूमिका - पृ. 8

सृजन के क्षेत्र में साही

साही एक सजग बुद्धिजीवि थे । वे साहित्य की बहुआयामी संभावनाओं से परिचित व्यक्ति थे । उन्होंने पहचान लिया कि यद्यपि वह देश और काल के अनुसार विभिन्न स्वरूपों में प्रकट होता तो है फिर भी उनका मकसद एक ही है । वह है मानवीयता का उत्कर्ष । इसलिए वे सृजन के क्षेत्र में इतने सतर्क रहे हैं । रचना के क्षेत्र में साही का प्रथम प्रवेश कवि के रूप में ही था । "तीसरा सप्तक" (1959) में साही की 20 कवितायें संकलित थीं । इसका प्रकाशन-काल नई कविता का उत्कर्ष-काल भी था । इसलिए नई कविता की प्राय: सारी विशेषताओं से साही की रचनायें ओतप्रोत हैं । इसके प्रकाशन (1959) से साही का कवि-व्यक्तित्व हिन्दी काव्य-जगत् में प्रतिष्ठित हो जाता है । इसी बीच जगदीश गुप्त के साथ मिलकर "आलोचना" नामक पत्रिका का संपादन किया तथा "नई कविता" पत्रिका का सह-संपादन भी । इस पत्रिका में प्रकाशित उनका लम्बा आलोचनात्मक लेख है "लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस" जो अब भी चर्चा का विषय बना रहता है । कविता में लघुमानव का परिचय देते हुए उसको प्रतिष्ठित करने की कोशिश प्रस्तुत लेख में की गई है । अपने कवि-व्यक्तित्व को और बुलन्द करते हुए साही ने 1966 में एक स्वतंत्र काव्य संकलन निकाला जिसका नाम है "मछलीघर" ।

मछलीघर

यह विजयदेव नारायण साही का प्रथम काव्य-संकलन है जिसका प्रकाशन 1966 में हुआ है । इस में कुल पच्चास कविताएँ हैं ।

सारी कविताएँ नई कविता की प्रवृत्तियों का समावेश करनेवाली एवं आगे के विकास की ओर अग्रसर होनेवाली हैं । इन में साही की काव्यानुभूति के नये आयाम खुल जाते हैं । सामयिक संकट को व्यक्त करनेवाली कवितायें भी साही के "मछलीघर" की कविताओं की खासियत है । नए भावबोध को विस्तृत बनाने का उपक्रम भी इस संकलन की कविताओं में हैं । इसके प्रकाशन से साही के कवि-व्यक्तित्व हिन्दी काव्य-जगत् में और एक बार निखर उठता है । ये नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का सही परिचय देने के साथ ही साथ हिन्दी कविता के आगे के विकास की ओर संकेत करनेवाली भी हैं । साही के निधन के बाद 1983 में एक और काव्य-संग्रह का प्रकाशन हुआ, वह है "साखी" ।

साखी

"मछलीघर" के प्रकाशन के लम्बे अन्तराल के बाद 1983 में प्रकाशित "साखी" संकलन भी साही की काव्ययात्रा की एक महान उपलब्धि है जो उनके निधन के बाद प्रकाशित हुआ । इसमें पैंसठ कवितायें हैं । इस संग्रह का शीर्षक "साखी" हमें सन्त-काव्य-परंपरा की ओर ले जाता है । उनके इस शब्द-प्रयोग का निहितार्थ भी यही है । इसकी कविताओं में कवि का सन्त कबीर के प्रति विशेष आदर का भाव दीख पडता है । संकलित कविताओं की मानसिकता कुछ विशिष्ट अनुभव-खण्डों से होकर गुज़रती है । समकालीन जीवन की समस्याओं का पर्दाफाश करने में "साखी" संकलन कामयाब बन गया है । इसी वर्ष साही के दो आलोचनात्मक ग्रन्थों का प्रकाशन हुए हैं - "जायसी" तथा "साहित्य और साहित्यकार का दायित्व" ।

जायसी

"जायसी" सूफी सन्त कवि जायसी का पुनर्मूल्यांकन है । इसमें सन्त परंपरा, परिवेश एवं दर्शन के तहत पर कवि जायसी में निहित मानवप्रेमी व्यक्ति जायसी को पकड पाने का प्रयास किया गया है । साही की राय में जायसी बिलकुल आधुनिक मानसिकता बरतनेवाला कवि थे । लेकिन अपने समय के तथा बादवाले लोग जायसी की इस विशेषता को पकड पाने में असमर्थ निकले हैं । अत: जायसी की रचनाओं का विश्लेषण करते हुए कवि जायसी की मानसिकता एवं व्यक्ति जायसी की गरिमामय अन्तर्दृष्टि को प्रकाश में लाने का स्तुत्य कार्य इस ग्रन्थ का लक्ष्य रहा है जो सफल भी निकला है ।

साहित्य और साहित्यकार का दायित्व

1983 में प्रकाशित साही की और एक आलोचनात्मक रचना है "साहित्य और साहित्यकार का दायित्व" । यह साही के साहित्य संबंधी व्याख्यान-माला का संकलन है । इसमें तीन आलोचनात्मक लेख हैं जो साहित्य और राजनीति दोनों में साही की सक्रियता रेखांकित करनेवाले हैं ।

छठवाँ दशक

1987 में साही की रचना "छठवाँ दशक" प्रकाश में आई । यह साही के चिन्तन संबंधी लेखों का संकलन है । व्यक्ति की

स्वतंत्रता एवं समाज संबंधी साही की परिकल्पना "छठवाँ दशक" में अभिव्यक्त हुई है । मुक्त-चिन्तन के रचनाकार होने के नाते साहित्य और संस्कृति के नये प्रतिमानों की खोज यहाँ उनका उद्देश्य रहा है । समाज में व्यक्ति का स्थान, उसकी आज़ादी का महत्व आदि का विश्लेषण इस में हुआ है ।

साहित्य क्यों ?

"छठवाँ दशक" के प्रकाशन के बाद अगले वर्ष याने 1988 में साही का साहित्य संबंधी आलोचनात्मक ग्रन्थ "साहित्य क्यों ?" निकला । साहित्य संबंधी विविध पहलुओं को छूते हुए उन्होंने इसमें कुल नौ निबन्ध प्रस्तुत किये हैं जो पाठक के मस्तिष्क को क्रियाशील करनेवाले हैं । इस संग्रह में संकलित लेख 1965 से 1979 के बीच लिखे गये हैं और इसमें "साहीजी के चिन्तन की "छठवाँ दशक" के बाद की कड़ी प्रस्तुत हैं ।"[1] धर्मनिरपेक्षता, भारतीयता, लोकतांत्रिक समाजवाद जैसे विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है । ये साहित्य-चर्चा के केन्द्र में रखने योग्य अवश्य हैं । इस कृति के प्रकाशन के दो साल बाद सन् 1990 में साही की दो किताबें प्रकाश में आयीं । उनमें एक "लोकतांत्रिक कसौटियाँ" है और दूसरा "संवाद तुम से" ।

---

1. साहित्य क्यों - विजयदेव नारायण साही - भूमिका - कंजनलता साही- पृ. ।

लोकतंत्र की कसौटियाँ

साहीजी के राजनैतिक लेखों का एक संग्रह "लोकतंत्र की कसौटियाँ" सन् 1990 में निकला है जिसमें समाज एवं राजनीति संबंधी ग्यारह लेख हैं । सामाजिक परिवर्तन संबंधी विभिन्न पहलुओं को विस्तार से विश्लेषण करनेवाले लेख इस संग्रह की विशेषता हैं । इस से मालूम पडता है कि साहीजी की दृष्टि केवल राजनीतिक नहीं थी राजनीति को वे इस मौलिक परिवर्तन का एक अंग मात्र मानते थे । लोहिया और जयप्रकाश की विचारधाराओं से साही का चिन्तन कहाँ तक प्रभावित है यह जानने के लिए भी प्रस्तुत रचना सहायक निकली है । स्वयं अध्यापक होने के नाते एक लेख में उन्होंने प्रशासकों, अध्यापकों तथा छात्रों के बीच उत्पन्न अलगाव और खाई की चर्चा भी की है ।

संवाद तुम से

1990 में ही प्रकाशित और एक काव्य संग्रह है "संवाद तुम से" । इसमें पूर्ववर्ती काव्य संकलनों के प्रकाशन के समय असंकलित छोडी गई कुछ कवितायें तथा बाद में लिखी गई कुछ कविताएँ संकलित हैं । "तीसरा सप्तक" से लेकर "मछलीघर" और वहाँ से "साखी" तक की कविता-यात्रा में जिन जिन काव्य-प्रवृत्तियों का विकास एवं विस्तार साही में हुआ है यह समझने के लिए प्रस्तुत संकलन पर्याप्त है । इस में उनकी समकालीन कवितायें संकलित हैं । साखी की कविताओं की अपेक्षा इस नये संग्रह की कविताओं में समकालीन जीवन की निकटतम अनुभूति का संप्रेषण है जो रचना को बिलकुल

समकालीन बनाता है । पूर्ववर्ती कविता में जीवन से जिस दूरी की प्रतीति हुई है वह इस में बिलकुल नहीं । जीवन की धड़कनों को ज्यों का त्यों अनुभव करानेवाली इसकी कवितायें कवि का आम आदमी के साथ संवाद है ।

वर्धमान और पतनशील

साही का और एक आलोचनात्मक ग्रन्थ है "वर्धमान और पतनशील" । इसका प्रकाशन 1991 में हुआ । यह पन्द्रह लेखों का एक संकलन है । हिन्दी गीत-परंपरा का नया उत्थान, रामचन्द्र शुक्ल और जायसी पर आलोचना आदि इस में शामिल है । साही का कहना है, "साहित्य का संबंध हम से - आप से, जो साधारण जन है, उन से है ।"[1] इस में उन्होंने बताया है कि साहित्य का एक बहुत ज़रूरी काम यह है कि मनुष्य और उसकी अनुभूतियों को बराबर विस्तृत करता चले । मतलब साहित्य का लक्ष्य मनुष्य के अनुभव-क्षेत्र का विस्तार है ।

आवाज़ हमारी जायेगी

1995 में साही के वर्षगाँठ के सिलसिले में उनके गीत-गज़लों का एक संग्रह "आवाज़ हमारी जायेगी" का प्रकाशन हुआ ।

---

1. वर्धमान और पतनशील - विजयदेव नारायण साही - पृ. 137

यद्यपि गीत-गज़ल आधुनिक कविता की एक नूतन विधा है, तथापि साही की दिलचस्पी उसमें भी रही है । उपरोक्त रचनाओं से साही के सृजनात्मक व्यक्तित्व की सही पहचान हमें प्राप्त हो जाती हैं । गोया कि साही का सृजन-क्षेत्र विशाल है । उनका कार्यक्षेत्र भी बहुआयामी है । इस बहुआयामीत्व का सही गवाह है उनकी रचनाएँ ।

साहित्य के प्रति रुझान

व्यक्ति की छाप साहित्य में जाने-अनजाने समाविष्ट हो जाती है । साही और उनका मित्र जगदीश गुप्त का साहचर्य केवल "नई कविता" और इलाहाबाद विश्वविद्यालय तक सीमित नहीं रहा बल्कि साहित्यिक और सामाजिक चिन्तन में भी उन दोनों की आत्मीयता एवं समशीलता गतिशील रही है । साही कुशल अनुवादक और आग्रहशील वक्ता भी थे । "आलोचना" पत्रिका निकालने में और नई कविता के सह-संपादन में साही जगदीश गुप्त के साथ व्यस्त रहे हैं । साही का रचना-क्षेत्र काफी विशाल है । वे बहुत लिखनेवाले थे पर प्रकाशित करना उतना पसन्द नहीं करते थे । उनकी इस विचित्र विशेषता की ओर इशारा करते हुए उनका मित्र श्री केशवचन्द्र शर्मा लिखते हैं - "कम लोगों को पता होगा कि साही ने सशक्त नाटक लिखे, नाटक खेले, प्रमुख भूमिकायें की, निर्देशन भी किया । साही ने कहानियाँ लिखीं - प्रचुर मात्रा में कविता, कहानी, पैरडी, सडक-साहित्य, डायरियाँ - जो अनन्त है और जिन में अपने वक्त के साहित्यिक, राजनैतिक जगत पर

टिप्पणियाँ है उनमें कुछ ऐसे विषय भी है जो साही को रातों दिन मथते रहते थे ।"[1] ज़ाहिर है कि साही की लेखनी साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर पडी है पर उन सब का प्रकाशन नहीं हुआ । इसलिए साही के साहित्य का अधिकांश पहलु अनावृत ही रह गया है ।

आलोचक साही

आलोचना के क्षेत्र में भी साही का प्रमुख स्थान एवं प्रतिष्ठा है । उनका बहुचर्चित आलोचनात्मक लेख "लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस", "नई कविता" पत्रिका में प्रकाशित हुआ है जो आलोचना के क्षेत्र में साही की प्रथम एवं सफल कोशिश थीं । इस लम्बे आलोचनात्मक लेख की चर्चा सभी प्रतिष्ठित कवियों ने सब कहीं की है । इसमें उनके द्वारा उठाये गये मुद्दे आज भी विचारणीय है । लघुमानव (आम आदमी) और महामानव (सुपरमैन) का परिचय देते हुए कविता में लघुमानव की स्थापना करने का स्तुत्य प्रयास इस लेख में किया गया है और यहाँ साही सफल भी हुए । साही ने खुद यह निष्कर्ष निकाला है - "लघु से महत्, यथार्थ से आदर्श, गुलामी से आज़ादी की ओर परिवर्तन स्वाभाविक है ।"[2] अलावा इसके अपने आलोचनात्मक व्यक्तित्व को स्पष्ट करनेवाले कई लेख एवं भाषण साही ने यत्र तत्र प्रस्तुत किया है । साहित्य और सँस्कृति के नये प्रतिमानों की खोज करते हुए

---

1. पूर्वग्रह अंक-65 - सं. अशोक वाजपेइ -वीरेन्द्रकुमार का लेख - पृ. 7
2. नई कविता - सं. जगदीश गुप्त और साही - साही का लेख - पृ. 72

उन्होंने "साहित्य क्यों", शीर्षक रचना को प्रस्तुत किया । पाठक के मस्तिष्क को क्रियाशील बनानेवाले कई निबन्ध इसमें हैं । "जायसी" उनकी और एक आलोचनात्मक कृति है जिसमें सूफी कवि जायसी के व्यक्तित्व को एक नूतन ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । अलावा इसके साही के अनेक भाषण हैं जिन में उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट हैं ।

घरेलु रिश्ता

विजयदेव नारायण साही अपने परिवार में एक प्रेमी पति और उदार पिता थे । साही की धर्मपत्नी कं चनलता विश्वविद्यालय में उनकी सहयोगिनी और घर में उनकी समर्पित सहचरी रही है । वह पति के रूप में ही नहीं बल्कि एक प्रतिभा के धनी कवि के रूप में तथा समाज-सजग राजनैतिक कार्यकर्ता के रूप में उनका गहरा सम्मान एवं श्रद्धा करती है । पति के निधन के बाद भी वर्ष गाँठ मनाने में और ऐसे अवसर पर साही की रचनाओं को प्रकाशित करने में कवि-पत्नी कं चनलता अतीव रूचि एवं उत्साह प्रकट करती रहती है । "आवाज़ हमारी जायेगी" शीर्षक साही की रचना ऐसे एक प्रयास की परिणति है । यह पति-पत्नी के बीच के गहरे लगाव का सूचक भी है । साही सरल एवं प्रेममयी शब्दों का प्रयोग करनेवाले थे । घर में ही नहीं बाहर भी वे अपनी बातचीतों से दूसरों को सन्तोष देते थे । कुंवर नारायण के शब्दों में - "उनकी बातचीतों का अपना अलग ही रस और विवेक होता था ।"[1] अतः

---

1. पूर्वग्रह - अंक-65 - सं. अशोक वाजपेइ - कुंवर नारायण का लेख - पृ. 50

साही के प्रेममयी व्यक्तित्व का असर घर के चार दीवारों के भीतर ही नहीं सब कहीं देखने को मिलता है ।

कवि एवं कविता संबंधी मान्यता

विजयदेव नारायण साही अपने समय के हिन्दी साहित्यकारों में प्रमुख थे जिनका गंभीर अध्ययन एवं मूल्यांकन होना ही चाहिए था । पर साही लगभग उपेक्षित ही रह गये । वे "तीसरा सप्तक" (1959) का कवि हैं । अज्ञेय द्वारा संपादित सप्तक काव्य परंपरा का स्थान हिन्दी कविता के इतिहास में असन्दिग्ध है । उनमें कविताओं के साथ कवियों के आत्म-वक्तव्य भी प्रकाशित है । ये सिर्फ भूमिका नहीं थे बल्कि आधुनिक कवि की काव्य संबंधी अन्तरंग पहचान थे । ये आधुनिक कविता को समझने और समझाने का सराहनीय प्रयत्न भी थे । बदली हुई आधुनिक संवेदना की सही पहचान के लिए इन आत्म-वक्तव्यों का स्थान विशेष उल्लेखनीय है । नहीं तो आधुनिक जीवन को इन कवियों ने किस प्रकार आँका है, या किस तीव्रता के साथ भोगा है अथवा बदलते काव्य-चिन्तन को इन्होंने कैसे स्वीकारा है ये सब अनबूझे रह जाते । गोया कि कवियों के रचना-व्यक्तित्व एवं सृजनात्मक मानसिकता को पहचानने में ये आत्म-कथ्य बिलकुल सहायक रहे हैं ।

काफी विरोधाभासजनक होने के बावजूद साही के काव्य-चिन्तन एवं जीवन-दर्शन को निर्धारित करने के लिए उनका

आत्म-वक्तव्य सहायक एवं पाथेय रहा है । ये उनके शील के रूप में बताए गये हैं । क्योंकि उनमें प्रकट होनेवाली विरोधाभासजनक सूचनायें जीवन एवं समाज के विरोधाभासात्मक मूल्यों की टकराहट से उद्भूत है । वे जीवन-मूल्यों में अन्तर्निहित तनावों का एहसास देनेवाली है । साही के शीलों का महत्व परिवेश के साथ एक जागरूक एवं सचेत कवि की अन्त: प्रतिक्रियाओं के रूप में है ।

साही ने अपने वक्तव्य की शुरूआत इस वाक्य से की है, "मेरी कविता का आधार आस्था है ।"[1] वास्तव में इस आस्था के पच्चीस शील ही तो उन्होंने निर्धारित किए हैं । क्योंकि आस्था जीवनी-शक्ति का उत्स है । आस्था का आधार जीवनानुभव है । काव्य-रचना के क्षेत्र में यह जीवनानुभव कवि की निजी संपत्ति है । जहाँ तक नई कविता का संबंध है, उसका आधार ही आस्था है । यहाँ साही का प्रयास आस्था और अनास्था की टकराहट से आस्थाओं के स्तर पहचानने का है । नई कविता की अनुभूति का धरातल भी बहुत व्यापक है । इस प्रकरण में साही का कहना है - "कविता का विषय वह होता है जो अब तक की भोगने की प्रणाली में नहीं बैठ पाता ।"[2] क्योंकि अनुभव का सीधा संबंध कविता से नहीं । अनुभव को यथासंभव प्रस्तुत करने की प्रणाली एवं अनुभूति की गहराई में काफी अन्तर है । अनुभूति के संबंध में नई कविता में आकर विचार एकदम बदल गया है ।

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही का वक्तव्य - पृ. 175
2. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही का वक्तव्य - पृ. 176

मुक्तिबोध के शब्दों में -"साहित्य का उद्देश्य सांस्कृतिक परिष्कार है, मानसिक परिष्कार है ।"[1] याने कि साहित्य मनुष्य को मनुष्य बनाने का प्रयत्न करता है । सच्चे साहित्यकार का धर्म ही यह है कि मनुष्य को और सुसंस्कृत एवं मानवीय बनाना । नई कविता में यह प्रवृत्ति काफी सक्रिय है । नई कविता मानवीय स्थितियों पर ज़्यादा जागरूक रही है और उसके वर्तमान को बदलने में उसने काफ़ी ज़ोर भी दिया है । साही का लक्ष्य भी मनुष्य को सुधारना या उसका परिष्कार करना है, "हर कलाकृति ठोस, विशिष्ट अनुभूति से उपजती है और उनका उद्देश्य अनुभूति की सामान्य कोटियों को नये सिरे से परिभाषित करना होता है ।"[2] यहाँ साही का मतलब मौलिक प्रतिभा से जन्मी मौलिक अनुभूति की तरफ है । अनुभूति की सामान्य कोटि का सामान्य स्तर अनुभूति से काव्यात्मक होने का स्तर है । अतः साही की कविता एक आत्म-निवेदन बन जाती है । उनकी कविता आम आदमी की विसंगतियों, विकृतियों, कुंठाओं से भरे जीवन में से जीवनी शक्ति ग्रहण करती है । इसलिए साही का कविता एवं कवि संबंधी दृष्टिकोण तभी निखर उठता है जब वे अपने को अ-कवि से अलग मानते हैं ।

व्यक्ति संबंधी दृष्टिकोण

नई कविता व्यक्ति-सापेक्ष कविता है । इसका यह अर्थ नहीं है कि वह समाज-विमुख है । सामाजीकरण या मूर्त

---

1. नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - मुक्तिबोध - पृ. 78
2. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही का वक्तव्य - पृ. 176

सामाजिक समस्याओं के उदात्तीकरण के माध्यम से अनुभूति की पारदर्शिता को नुकसान पहुँचाने का उपक्रम नई कविता में या नये कवि में नहीं । जगदीश गुप्त का कथन इस संदर्भ में विशेष विचारणीय लग रहा है, "जन-जीवन और व्यक्ति के बीच एक सन्तुलन खोजने की समस्या इस युग की सब से बड़ी समस्या है ।"[1] उनकी राय में स्वतंत्रता मनुष्य को मनुष्य बनाने का उपक्रम है । वह मनुष्यता की पहचान है । लेकिन अस्वतंत्रता को आत्महत्या के बराबर माननेवाले साही की व्यक्तिवादिता समाज को अनदेखा करनेवाली या समाजविमुख नहीं । वे यह मानने के पक्ष में हैं कि व्यक्ति की पहचान समाज के कारण ही होती है । यह बात "नदी के द्वीप" शीर्षक कविता में अज्ञेय ने भी प्रस्तुत की थी । यहाँ साही और अज्ञेय में समानता तो दिखाई देती है पर अन्य अधिकांश विषयों पर उनका दृष्टिकोण भिन्न भिन्न है । साही व्यक्ति की लघुता को गरिमा के साथ आत्मसात किया हुआ कवि है । इस लघुताबोध के कारण ही उन्होंने व्यक्ति-गरिमा की गिरती स्थिति पर अपना विरोध प्रकट किया है । व्यक्ति की लघुता पर वह गरिमा का अनुभव करता है । अपनी "हवा चली" शीर्षक कविता में यह यों अभिव्यक्त है,

"पिंजरे से छूटी हुई लक्ष्यहीन चिड़िया सी
डरी डरी, पगलायी, पुलकायित
कमरों में, छतों पर, झुकी खपरैलों पर
उड़ती फिरती
मेरी कुर्सी के पीछे आकर खड़ी हुई
लपटों सा आलोकित हाथ बढ़ा

---

1. नई कविता स्वरूप और समस्यायें - जगदीश गुप्त - पृ. 163

चलती मेरी कलम को रोक गई ;
हँसकर बोलो
लिखने न दूँगी तुम्हें
मेरी ओर देखो -
क्या मुझसे मनोरम है ये झूठी कवितायें ?"[1]

इसकी अंतिम पंक्ति विशेष रूप से विचारणीय है कि कविता व्यक्ति से बिलकुल मनोरम नहीं है । व्यक्ति की पतनोन्मुख स्थिति या गिरती हैसियत का चित्र साही यहाँ प्रस्तुत करते हैं । इस दृष्टिकोण में साही के रचनात्मक अहं के एक और परिदृश्य का बोध प्राप्त होता है । पूरी कविता में समाज के विरोधाभास से उद्भूत कसक भी है । हर कहीं वे इस विरोध को पाते हैं जो एक स्वस्थ समाज के लिए स्पृहणीय नहीं । इसलिए लगातार जूझने की प्रवृत्ति, और कहीं भी अभिसन्धि के लिए तैयार न होनेवाला व्यक्तित्व कवि साही के व्यक्तित्व की अपनी खासियत बन जाती है । एक राजनीतिज्ञ होते हुए भी साही आदर्श और यथार्थ के बीच समझौता नहीं कर सके । अतः उनकी पार्टी के लिए वे "विद्रोही" बन गए हैं । साही अत्यन्त संवेदनशीलता, कवि-मानसिकता, आत्म-सम्मान एवं गर्व के साथ जीवन जीना चाहते थे । दुनिया के सामने बिना घुटने टेके, बिना कातर हुए वे जीवन के मैदान में आद्यन्त खड़े रहे । 5 नवंबर 1982 में जब साही का निधन, हृद्गति के रुकने के कारण, इलाहाबाद में हुआ तब हिन्दी साहित्य को एक आत्मचेता कवि, आदर्श राजनीतिक कार्यकर्ता एवं सच्चे मानव प्रेमी का नुकसान हुआ ।

---

1. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 8।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

व्यक्ति के रूप में ही नहीं साहित्यकार के रूप में भी साही अपने को बिलकुल स्वतंत्र रखना चाहते थे । क्योंकि अभिव्यक्ति का स्वतंत्र होना ज़रूरी है । वह कवि की अस्मिता की पहचान है । कवि जो लिखता है उसका पूरा दायित्व कवि पर ही निहित है, "मैं परम स्वतंत्र हूँ । मेरे सिर पर कोई नहीं है । अर्थात् अपने किए के लिए मैं शत-प्रतिशत जिम्मेदार हूँ ।"[1]

समाज संबंधी मान्यता

व्यक्ति संबंधी परिकल्पना के प्रकरण में साही ने समाज संबंधी उपरोक्त मान्यता प्रकट की है । अज्ञेय और मुक्तिबोध को व्यक्ति एवं समाज संबंधी अपनी अलग मान्यता तो है । जाहिर है कि साही का व्यक्ति-जीवन एवं साहित्यिक जीवन संघर्षों से भरा हुआ है । वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन की तपिश में गलकर उनका साहित्यिक दृष्टिकोण रूपायित हुआ है । साही व्यक्ति के व्यक्तित्व पर ज़ोर देनेवाला तथा समाज के साथ उसके अनिवार्य संबंध को माननेवाला व्यक्ति है । दोनों के मिलन के बिना समाजवादी समाज की स्थापना असंभव है । यह समाज कवि का स्वप्न है । पूरे साहित्य में यह स्वप्न अन्तर्निहित है । इसलिए उनका साहित्य अपने समय का सही दस्तावेज़ तथा भविष्योन्मुख बन गया है ।

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही का वक्तव्य - पृ. 175

दूसरा अध्याय

साही का काव्य-चिन्तन
आधुनिक हिन्दी कविता के संदर्भ में

दूसरा अध्याय

साही का काव्य - चिंतन

आधुनिक हिन्दी कविता के संदर्भ में

साही मूलत: कवि थे । अत: काव्य संबंधी उनकी अलग धारणायें भी थीं । उनके काव्य-संग्रहों में इन धारणाओं का समर्तन हुआ भी है । "तीसरा सप्तक"में संग्रहीत कुछ कविताओं के अलावा साही के कुछ काव्य-संग्रह भी निकले हैं जैसे "मछलीघर", "साखी", "संवाद तुम से" और "आवाज़ हमारी जायेगी" । इनमें से "तीसरा सप्तक" और "मछलीघर" की कवितायें नई कविता की कथ्य एवं शिल्पगत विशेषताओं को लेकर चलनेवाली हैं तो "साखी" और "संवाद तुम से" समकालीन कविता की । साही का सद्यप्रकाशित काव्य संग्रह है "आवाज़ हमारी जायेगी" । इस में साही के गीतों एवं गज़लों को संग्रहीत किया गया है । गज़ल यद्यपि नया काव्य रूप तो नहीं है फिर भी साही के हाथों ये कुछ नवीनताओं को लेकर प्रस्फुटित हुए हैं । दर असल साही की कविता यात्रा प्रयोगवाद से लेकर समकालीन कविता तक व्यापी हुई है । इस विशाल काव्य भूमि में साही ने काव्य संबंधी अपनी मानसिकताओं को रूपायित किया है । ये सचमुच उनके काव्य-चिन्तन संबंधी विकास को सूचित करनेवाले भी हैं ।

अज्ञेय द्वारा संपादित "तीसरा सप्तक" (1959) में साही की बीस कवितायें संकलित हैं । इसके प्रकाशन के साथ हिन्दी

काव्य-जगत् में नई कविता प्रतिष्ठित हो जाती है । नई कविता की सारी विशेषतायें साही की कविता में विद्यमान है । युग-यथार्थ को अभ्यन्तरीकृत करना, उसके साथ प्रतिक्रिया करना नई कविता की अलग पहचान रही हैं जो साही की कविता की मूल संवेदना है । मानव-जीवन की जटिलता को उन्होंने काव्य का विषय बनाया है । क्योंकि आधुनिक जीवन का वास्तविक यथार्थ ही यह जटिलता है । अतः कविता में अभिव्यक्त सन्त्रास या विह्वलता कवि की वैयक्तिक मानसिकता का परिणाम नहीं बल्कि विशाल जन-जीवन की समग्र पहचान का परिणाम है । इस विराट जगत में मनुष्य की लघुता का तथा उसकी निस्सहायता का एहसास इस गहरी पहचान का परिणाम है । यद्यपि निराला ने अपनी कुच्छेक कविताओं (भिक्षुक, तोड़ती पत्थर, जागो फिर एक बार आदि) में समाज के लघुमानव के अंतरंग यथार्थ की ओर इशारा करने का उपक्रम तो किया था तथापि उसका वास्तविक विकास साही की कविताओं में हुआ है । साही की दृष्टि में यह मात्र आधुनिक जीवन की विडंबना नहीं बल्कि मानव जीवन की ऐतिहासिक निरन्तरता का परिणाम है । इस को दूर करने के लिए समग्र सामाजिक परिवर्तन अपेक्षित है । नई कविता का और एक सशक्त हस्ताक्षर गिरिजाकुमार माथुर ने साही के काव्य-चिन्तन के मर्म को उद्घाटित करते हुए कहा, "इतिहास की प्रक्रिया के संदर्भ में आदमी की विडंबना की गहरी पकड़ विजयदेव नारायण साही की रचनाओं में मिलती है जो उन्हें नई कविता के समर्थ कवियों की पंक्ति में बिठाती है ।"[1] स्पष्ट है साही

---

1. नई कविता सीमायें और संभावनायें - गिरिजाकुमार माथुर - पृ. 20

का काव्य-चिन्तन सामाजिक यथार्थ की अनुगूँज से उभरा हुआ नहीं बल्कि मानव-जीवन के ऐतिहासिक विकास-परिणाम की गहरी पहचान से रूपायित एवं विकसित हुआ है जिसकी तह में वामपंथी विचारधारा का ठोस धरातल है ।

विसंगति-बोध

प्रयोगवाद से हिन्दी कविता में आधुनिक जीवन की विसंगति का चित्रण शुरू होता है । साही की कविताओं में इसकी अभिव्यक्ति काफी सशक्त है । "तीसरा सप्तक" की कविताओं से लेकर उनके संपूर्ण काव्य-जीवन में इस विसंगत यथार्थ का चित्रण व्यापा हुआ है । क्योंकि साही एक युगद्रष्टा तथा समाजद्रष्टा कवि थे । वे निरन्तर सामाजिक अत्याचारों एवं अनीतियों के विरुद्ध संघर्षरत रहे हैं । अत: साही के संदर्भ में विसंगतिबोध अज्ञेय से काफी भिन्न है । यह बिलकुल सामाजिक है । यहाँ सामाजिक संदर्भ में विसंगतिबोध का मतलब है सामाजिक अनैतिकता । विकट सामाजिक परिस्थितियों में जकडा हुआ व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उसका जीवन ही नहीं यह सामाजिक जीवन ही बिलकुल विसंगत है । उसकी कोई अर्थवत्ता नहीं है । यहाँ से जीवन के मूल्य एवं सार्थकता के संबंध में व्यक्ति नये सिरे से सोचने-विचारने के लिए विवश बन जाता है । वर्तमान समाज के मूल्य-विघटन की चरम स्थिति ही इस विचार के लिए व्यक्ति को

विवश कर डालती है । आज का मानव इस स्थिति को ढोने के लिए अभिशप्त है । आधुनिक साहित्य इसका दस्तावेज़ भी । इस संदर्भ में साही की कविता की परिचर्चा अनिवार्य बन जाती है, "क्योंकि साही का कवि-व्यक्तित्व इन कविताओं से पर्याप्त शक्ति के साथ सामने आ गया ।"[1] साही की कविताओं में अन्तर्लीन सत्य दुःख नहीं बल्कि वह विसंगत यथार्थ है जिसमें जीने के लिए आधुनिक मनुष्य विवश है । "दर्द को देवापगा" शीर्षक साही की कविता में यह बोध स्पष्ट है -

"अगर केवल प्यार ही होता
तो उसे कह डालता
यह अपरिमित ज्वार
जो तन तोड़ता, खिंचता उमड़ता
विवश उठता और गिरता
मौंजता है परिधि को
अगर केवल दर्द ही होता
तो उसे सह डालता ।"[2]

इसमें हमें यह प्रतीति मिलती है कि कवि कई प्रकार की परेशानियों से त्रस्त है । कवि का कथ्य प्यार या दर्द प्रस्तुत करना नहीं बल्कि उससे बढ़कर मानव जीवन में व्याप्त एक गंभीर त्रासदी है जिसको अभिव्यक्त करना कवि के लिए अपेक्षित है । उस यथार्थ को भीषणता का शिकार बनकर आम आदमी यहाँ जीने के लिए संघर्षरत है । क्योंकि कवि या

---

1. पूर्वग्रह-65 - सं. अशोक वाजपेइ - जगदीश गुप्त का लेख - पृ. सं. 92
2. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. सं. 180-181

व्यक्ति यहाँ मानवराशि का प्रतिनिधि मात्र बनता है । इस यथार्थ की ओर या सामाजिक विद्रूपता की ओर कवि साहो यहाँ इशारा करता है । इस विद्रूपता को कवि आगे इस प्रकार व्यक्त करता है -

"और कब तक मुक्ति प्यासी अस्तियों की चीख
भी सुनता रहूँ ?
खोल दो मेरी शिरायें खोल दो ;
तोड़ दो मेरी परिधियाँ तोड़ दो ;
बहो बहो
फूट करके बहो
मेरे दर्द की देवापगा" ।[1]

विसंगत स्थिति का अवसाद भरा भग्नावशेषनुमा चित्र उनकी और एक रचना "हिमालय के आँसू" में है जिसमें भी विसंगति की झलक स्पष्ट है -

"ओ दुखी हृदय
है सत्य हिमालय सा तुम ने दिल पाया था
है सत्य कि तुम को मात्र मिला था सूरज सा
है सत्य कि छाती थी पठार सी अन्तहीन
और आज सिर्फ भग्नावशेष
बेस्वाद सान्त्वना, धीरज, ढाढस, सब्र, भाग्य,
उजियाले की जड़ हँसी
अन्धेरे के आँसू" ।[2]

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. सं. 181
2. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. सं. 39

यहाँ हिमालय का रोना और सूरज का गलना जैसी बिंबवादी क्रियाओं के माध्यम से उस अवसाद को और अधिक गहराने का स्तुत्य प्रयास साही ने किया है । कवि बताना चाहता है कि हिमालय का कमरों में बन्द रहकर रोना अभी नहीं शुरू हुआ उसी प्रकार सूरज गल गलकर युग युग हो गये । इसलिए आँसू के लिए कायरता कुछ ही नहीं है -

"सच मानो प्रिय
इन आघातों से टूट टूटकर रोने में कुछ शर्म नहीं
कितने कमरों में बन्द हिमालय रोते हैं
मेजों से लड़ाकर सो जाते कितने पठार
कितने सूरज गल रहे अन्धेरे में छिपकर
हर आँसू कायरता की खीझ नहीं होता।"[1]

विसंगत जीवन में कभी-कभी उदासी का अनुभव भी होता है यह भी इसका दूसरा परिणाम है । हृदय में कुछ न कुछ होने की सी बोझ अनुभव करने के कारण किन्हीं पर्तों से एक सुकुमार दाग उभर रहा है ताकि समूची ज़िन्दगी ही खामोशी से भर गई सी लग रही है -

"ज़िन्दगी कुछ इस तरह खामोशियों से भर गई
खोजता फिरता हूँ दिल का दर्द पर पाता नहीं
दर्द से जैसे झुकी जाती है पलकें बार बार
और रोने में भी पहले सा मज़ा आता नहीं।"[2]

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. सं. 182
2. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. सं. 187

अपने चारों तरफ़ खामोशी का अनुभव करना अवसाद की चरम स्थिति है; अवसाद के साथ अनिश्चयता का बोध भी । साही के "मछलीघर" काव्य-संग्रह की "अलविदा" शीर्षक कविता में उन्होंने इस अवस्था को शब्दबद्ध किया है -

"मेरे जाते ही
यहाँ जहाँ मैं खड़ा हूँ
तुम्हें एक खालीपन का एहसास होगा
जिसे तुम हाथ बढ़ाकर
छूने की कोशिश करोगे"[1]

बात सही है कि एक खालीपन को हम सभी महसूसते हैं जिसमें अब अनेक खालीपन जुड़ते जा रहे हैं । साही ने अपनी उपरोक्त कविता में किसी एक घटना का नहीं पूरे घटनाक्रम का सूक्ष्म अनुभव किया है । सब कहीं शून्यता को ही प्राप्त करनेवाले व्यक्ति की ज़िन्दगी अर्थहीनता के किनारे को छू लेती है । इस विसंगत परिवेश से उसको सूनेपन के अलावा और कुछ नहीं मिलता । आधुनिक मानव की इस निस्सहाय स्थिति से मुक्ति पाने के लिए साही एक सहचर की तलाश करते हैं और एक संगठित शक्ति को चाहते हैं । वे लिखते हैं "संवाद तुम से" शीर्षक संकलन में -

---

१. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 120

"मैं केवल इतना कहता हूँ
इस सूने कमरे की सिसकन से क्या होगा ?
बाहर आओ
सब साथ मिलकर रोओ
आँसू टकराकर अंगारे बन जाते हैं" [1]

इस प्रकार अकेले रोने के बदले सब को एक साथ रोने तथा आँसू के अंगारे बनने की प्रतीक्षा करनेवाले कवि के सामाजिक बोध एवं चेतना की पहचान सहज ही स्पष्ट हो उठती है । आधुनिक मानव की इस विसंगत यथार्थ का कारण परिवेश का अभिशाप है,

"विश्वास करो
यह सिर्फ तुम्हारा दोष नहीं
यह नहीं कि सिर्फ तुम्हारी किस्मत झूठी थी
यह नहीं कि केवल तुम से ही थी चूक हुई
उस पर्वत का जादू ही ऐसा होता है ।" [2]

स्पष्ट है अपने सारे सपनों को बेचकर जीने की स्थिति का शिकार है आधुनिक मनुष्य । यह किसी एक काल का यथार्थ नहीं बल्कि बहुतों का है या यों कहिए कि बृहत्तर समाज का है । साही की कविता में इस बृहत्तर यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है । साही अपनी कविताओं के माध्यम से विसंगति की अभिव्यक्ति मात्र नहीं करते बल्कि उस के

---

1. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 40
2. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 42

सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक स्थितियों का भी चित्र प्रस्तुत करते हुए इस अवमानवीय स्थिति से उबरने का परोक्ष आह्वान भी देते हैं । इसलिए साही की कविता विकल्प की कविता है, वह आस्था की कविता है । वह एक स्वस्थ समाज तथा सन्तुष्ट जीवन की कामना की कविता है । अतः परमानन्द श्रीवास्तवजी ने कहा -"साही की कविता विकल्प की प्रतीक्षा की कविता है और विकल्प की प्रतीक्षा साही की कविता है ।"[1] संक्षेप में विसंगतिबोध नई कविता की मूल प्रवृत्ति रही है पर साही ने उसको विशेष संदर्भ में ग्रहण किया है । साही के मन में विसंगति सामाजिक विपर्यय का परिणाम है जिसके भीतर सचमुच आम आदमी त्रस्त है । पर यह विसंगति अकाट्य नहीं । इसको बदलना संभव है । इसके लिए सही समझ और सही लगन की अनिवार्यता है । इस प्रकार साही की कविता युग यथार्थ के अनावरण के साथ ही साथ जन-मानस में आस्था की शीतलता भरनेवाली कविता है ।

मुक्ति की कामना

साही आस्थावादी तथा मुक्ति कामी कवि थे । वे हमेशा स्वतंत्र तथा मुक्त जीवन बिताने के पक्षधर हैं । अस्वतंत्र होकर जीने की अपेक्षा मृत्यु का वरण ही श्रेष्ठ समझनेवाला कवि है साही । यहाँ स्वतंत्रता का व्यापक अर्थ होता है, संकुचित नहीं । उन्मुक्त जीवन

---

1. दिशान्तर - सं.परमानन्द श्रीवास्तव और विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - पृ. 10

का मतलब मनमाना जीवन नहीं बल्कि अपनी परंपरा, इतिहास एवं संस्कृति से रूपायित मानसिकता के अनुसार नैतिक जीवन बिताना ही है । प्रतिकूलताओं तथा विषमताओं से निरन्तर संघर्ष करते हुए जीना ही स्वतंत्र जीवन से तात्पर्य है । हमारा समाज विसंगत तो अवश्य है । विसंगत परिवेश में वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन का कुंठित हो जाना स्वाभाविक है । इस से संघर्ष करना तथा कुंठाग्रस्त स्थिति से उबरना ही मुक्ति की कामना से तात्पर्य है । यह साही की कविताओं का मूल स्वर है । वह समझौतावादी नहीं, संघर्ष के रास्ते को अपनानेवाला है । इसलिए उनकी कविता में तनाव का वातावरण छाया हुआ है । वर्तमान परिस्थिति से असंतृप्त एवं जीवन की विडम्बनाओं से त्रस्त होने के कारण जिस विवशता एवं झटपटाहट का माहौल उत्पन्न होता है वह साही की कविता की मूल स्थिति है । मानव राग, हिमालय के आँसू जैसी कविताएँ इसके लिए उदाहरण हैं । दोनों का मुख्य स्वर मुक्ति की कामना से ओतप्रोत है -

"हे नीड खोजती मुक्त कल्पना
मेरी आकाशी"[1]

"हिमालय के आँसू" शीर्षक कविता में साही इस अभिशप्त स्थिति से मुक्त होने के लिए संगठित करने की माँग करते हैं । क्योंकि उनकी राय में अकेले रोने या सिसकने से कोई फायदा नहीं ;

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 180

एक साथ मिलकर रोने से शायद आँसू टकराकर अंगारे बन जाएँ ; धरती पर पडे दरारें मिट जाएँ । याने देश को अभिशप्तता से मुक्त करने के लिए तथा अपनी विसंगत स्थिति से छुटकारा पाने के लिए एक व्यक्ति की ताकत नहीं, उसके लिए कइयों की ताकत ज़रूरी है -

"मैं केवल इतना कहता हूँ
इस सूने कमरे की सिसकने से क्या होगा ?
बाहर आओ
सब साथ साथ मिलकर रोओ
आँसू टकराकर अंगारे बन जाते हैं" [1]

एक प्रकार की सामूहिक चेतना का आह्वान कवि सर्वत्र करता हुआ नज़र आता है । अलक्ष्य होकर ज़िन्दगी से गुज़रनेवाले व्यक्ति को अकेले जाते जाते आखिर अवसाद एवं थकावट को स्वीकार करना ही पड़ता है । जीवन के हर क्षण में वह थका हारा बनकर टूटता जा रहा है, जीवन में अवसाद की धुआ छा जाती है । ऐसी एक त्रासद अवस्था का अंकन साही ने "विस्तृत विषाद ग्रन्थि" शीर्षक कविता में किया है । खामोशी की यह स्थिति उनकी ज़िन्दगी के अंत से इति तक बनी रहती है जो साही के ही शब्दों में व्यक्त है -

"क्षण भर को
कहीं एक
डूबा हुआ प्रश्न

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 182

उठता है तिरता है ओझल हो जाता है
कुछ भी बदलता नहीं "[1]

प्रस्तुत कवितांश की अन्तिम पंक्ति यहाँ विशेष रूप से विचारणीय है । यहाँ कवि स्वयं कहता है कि बहुत सारे प्रयत्नों के बावजूद कुछ भी बदलता नहीं । अर्थात् इस विसंगत अवस्था का ज्यों का त्यों बना रहना हमारे लिए दुखदायक है । परिवर्तित युग में मध्यवर्गीय जीवन की स्थिति यही है जिसका अवलोकन साही ने यों किया है -

"लगातार ज़मीन और आसमान को मिलानेवाली
नीरस बारिश होती रहेगी
जिसके बाद कुछ करने को
शेष नहीं रह जायेगा
जिस तरह हरास्त की धारा बहते बहते
एक सपाट सन्तुलन पर पहुँच जाती है
फिर कुछ भी घटित नहीं होता"[2]

इन पंक्तियों में यह भाव काफी स्पष्ट है । क्योंकि रचना प्रक्रिया में जीवनानुभव की भूमिका का नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता । "रचना-प्रक्रिया जीवनानुभव की उपेक्षा करके नहीं चल सकती । मुक्तिबोध कविता-सृजन की अचेतनवादी पद्धति के विरोध में जा खडे होते हैं । उसके लिए स्पष्ट ही कविता का सृजन एक सचेत प्रयास और कविता कोई नितान्त आध्यात्मिक वस्तु नहीं बल्कि प्रयत्नाभ्यास संवेदना,

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 14
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 16

कल्पना और बुद्धि के संश्लेषण से गठित रचना है" ।[1] साही के काव्य में भी यही जीवनानुभव है, लेकिन कुछ भिन्न प्रकार का अनुभव को साही कविता के साथ सीधा जोड़ना नहीं चाहते । उनका कहना है कि अनुभव विशेष संदर्भ में काव्य का रूप धर लेता है। रघुवीर सहाय के संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने जो टिप्पणी की थी वह साही के संदर्भ में सार्थक निकलता है -"मामुली शब्द और मामूली अनुभव में एक नई शक्ति सक्रिय कर देना यदि नई कविता की पहचान है तो इसका श्रेय रघुवीर सहाय को दिया जा सकता है ।"[2] इसका कारण यह है कि साही में भी मार्मिक अनुभव को विशिष्ट बनाने की अद्भुत क्षमता निहित है । वे व्यक्ति और समष्टि दोनों को समान महत्व देते हैं । दोनों के विशेष संयोग से ही कवि की मनोभूमि तैयार हो जाती है । यहाँ की मनोभूमि में विसंगति की उर्वरता है यही इसका अर्थ है । नई कविता मानवीय चेतना की कविता है, वह व्यक्ति की सचेतनता की सक्रिय अभिव्यक्ति है । हर युग में कविता को प्रासंगिक बनानेवाला पहलु उसकी अपनी मानवीय चेतना है । तब प्रश्न उठता है कि क्या मानवीय चेतना का सिलसिला पूरे हिन्दी काव्येतिहास में मौजूद है ? तो नई कविता में स्पन्दित मानवीय चेतना की विशेषता क्या है ? जवाब तो इतना देना पडता है कि नई कविता में मानवीय चेतना का एक गहरा क्षेत्र विवृत हुआ है । वह आज के जीवन के गहन सन्दर्भों का स्पर्श करती है । साही की कविता में मानवीय चेतना का जो स्वर अनुगुँजित है वे ही उसे साहित्यिक सरहदों के परे जाने की क्षमता प्रदान करते हैं ।

---

1. मुक्तिबोध - सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - पृ. 9
2. नई कवितायें एक साक्ष्य - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 38

आधुनिक जीवन का तनाव

नई कविता आम आदमी के निकट की कविता है । अत: उसमें उनके दुख, पीडा एवं अभावग्रस्त जीवन की विडंबनाओं का प्रस्तुतीकरण हुआ है । नई कविता मनुष्य की लघुता को स्वीकारने के साथ ही साथ उसकी गरिमा पर काफी सचेत भी है । वह मानवीय लघुता को मूल्य मानकर चलती है । साही की दृष्टि भी यही है - "साहित्य का एक बहुत ज़रूरी काम यह है कि मनुष्य और उसकी अनुभूतियों की परिपाटीग्रस्त परिभाषा को वह बराबर विस्तृत करता चले । जो जीवित है, चेतन है, हमारी ही तरह दर्द और खुशी महसूस कर सकता है ।"[1] अत: डा. नरेन्द्र वर्मा का कहना है, "उनकी कविता में पराभव और ग्लानि के चित्र ही अधिक मिलते है ।"[2] साही ने शायद इसी कारण से लघुमानव के लघु परिवेश की अभिव्यक्ति अपने काव्य में की है । नई कविता के प्रस्तुत पहलु का विचार - विस्तार उनके नए कवियों के द्वारा किया गया है । इसी विचार का समर्थन जगदीश गुप्त ने यों किया है, "मेरी यह स्पष्ट मान्यता है कि नई कविता के रूप में प्रयोगवाद की परिधि से बाहर आने पर आधुनिक हिन्दी कविता में मानववादी तत्व कहीं अधिक घनिष्ठ काव्यानुभूति के साथ व्यक्त हुए हैं ।"[3] प्रस्तुत कथन साही की कविता

---

1. वर्धमान और पतनशील - विजयदेव नारायण साही - आवरण पृष्ठ से ।
2. नई कविता सिद्धान्त और सृजन - नरेन्द्रदेव वर्मा - पृ. 80
3. कवितान्तर - जगदीश गुप्त - पृ. 40

संबंधी निजी मान्यता से मेल खानेवाला है । वे इस विचार का समर्थक भी है कि लघु परिवेश का आधार सामयिकता है । साही ने आज के व्यक्ति की नियति को अच्छी तरह पहचाना है । क्योंकि उन्हें मालूम है कि कविता का रिश्ता ज़िन्दगी के उलझन से है ; तनाव से है और मिठास से है । आधुनिक हिन्दी कविता इन से खाद-पानी लेकर पल्लवित हुई है । नई कविता में सर्वत्र नज़र आनेवाली एक प्रवृत्ति है तनाव । तनाव नई कविता में काफी तीव्र बन गया है । उनकी "एक अर्ध विस्मृत मित्र के नाम" शीर्षक कविता में इस तनाव को यों अभिव्यक्त किया गया है -

"किसी को खयाल नहीं था
कि वे सचमुच चले जायेगी
क्योंकि उन्हें बराबर बताया जा चुका था
कि युगों से अनन्वेषित इस सुरंग में
जहरीली प्यास है जिसमें मशालें बुझ जाती है ।"[1]

साही की कविताओं की यही "सिट्युएशन" है जो आधुनिकता की देन भी है ।

आधुनिकता

नये साहित्य के संदर्भ में बहुत चर्चित शब्द है "आधुनिकता"

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 76

आधुनिकता माने क्या है ? यह प्रश्न बहुचर्चित होने पर भी अस्पष्ट रह जाता है । विद्वानों ने इसे यों विशेषित किया है -"आधुनिकता बोध युग-चेतना से कुछ अधिक व्यापक है । आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की बहुत सी बातें युगीन समाज तक नहीं पहुँच पाती है और केवल बौद्धिक समाज तक ही सीमित रह जाती है ।"[1] इसी बात को डा. रामदरस मिश्र ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है, "आधुनिक बोध युगीन चेतना का बोध है या केवल आधुनिक काल की कोई मौलिक उपलब्धि है ।"[2] दर असल आधुनिकता एक मानसिकता है जिसको नई परिस्थिति ने रूपायित किया है । आधुनिक मानव के अन्तरंग यथार्थ का सही अनावरण ही आधुनिकता है । उसका यथार्थ क्या है ? उसका यथार्थ अनिश्चितता एवं अन्तर्विरोधों से ग्रस्त मानव का यथार्थ है । क्योंकि आधुनिक मानव में दोहरा व्यक्तित्व है । एक उसके भीतर का विश्वासी व्यक्तित्व और दूसरा उसके बाहर का अविश्वासी व्यक्तित्व । दोनों के बीच का संघर्ष ही उसे अनिश्चित, बेसहारा, कुंठाग्रस्त, संत्रस्त तथा सही निर्णय न कर पाने की स्थिति में पहुँचा देता है, "आज का मानव पूर्ण रूप से अनिश्चय की स्थिति में रहते हैं इस एहसास के फलस्वरूप आज की ज़िन्दगी में संत्रास और भय की स्थिति उत्पन्न हो गयी है ।"[3] संक्षेप में आधुनिक जीवन-परिस्थितियों के विशेष संदर्भ में

---

1. समकालीन हिन्दी कविता का परिप्रेक्ष्य और नवगीत - शंभुनाथ - पृ. 76
2. आधुनिक हिन्दी कविता सर्जनात्मक संदर्भ - डा. रामदरस मिश्र - पृ. 63
3. मुक्तिबोध रचनावली - भाग -2 - सं. नेमीचन्द्र जैन - पृ. 150

परंपरा का पुनर्मूल्यांकन करते हुए जीवन्तता का ग्रहण एवं जडता का निराकरण ही आधुनिकता है । वह कोई शाश्वत मूल्य नहीं है । आज का जीवन विडंबनाओं एवं विसंगतियों से भरपूर होने के कारण मानवीय मूल्यों एवं संबंधों में एक प्रकार का विघटन आ गया है । इस से व्यक्ति अपने अस्तित्व पर सचेत हो उठता है । वह अपनी अस्मिता की खोज शुरू करता है और पाता है कि उसका जीवन तनावों से भरा हुआ है । जीवन की जटिल समस्याओं से जूझकर वह क्षत-विक्षत हो जाता है । जीवन की भिन्न भिन्न परिस्थितियों से आधुनिक मानव की टकराहट होती है । परिणामतः "परंपरागत मूल्यों के प्रति संशय एक नई मूल्य अवधारणा के प्रति ललक एक ऐसा तनावपूर्ण वातावरण निर्मित करता है जिसे किया था ।"[1] मूल्य संबंधी साही की मान्यता यह है कि मूल्य-संबंधी उद्भावना भीतर से ही निकलती है । वह उनकी दृष्टि में शाश्वत है । रचना में वह सगुण हो उठता है, "इस अर्थ में आप कह सकते हैं कि मानव मूल्यों में एक शाश्वतता है मगर यह सही है कि यह शाश्वतता जब रूप ग्रहण करती है, आकार ग्रहण करती है कविता में, कहानी में, कला में अभिव्यक्त होती है तो वह इस तरह से निर्गुण ढंग से अभिव्यक्त नहीं होता । उसका रूप हमेशा सगुण ही रहता है ।"[2] इसलिए साहित्य मानव के श्रेष्ठ मूल्यों का संवाहक होता है । उस में समाज का अतीत, वर्तमान एवं भविष्य की चिन्ता बनी रहती है । नए साहित्य में

---

1. आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में - गंगा प्रसाद विमल - पृ. 38
2. पूर्वग्रह-65 - सं. अशोक वाजपेइ - साही का लेख - पृ. 38

नए मानव की समस्याएँ इसलिए चित्रित है, क्योंकि वह आधुनिक मनुष्य एवं समाज पर अधिक चिंतित है ।

संक्षेप में साही का काव्य-चिन्तन अपने समय के साथ अभिन्नत: जुडा हुआ है । सामाजिक समस्याओं के सूक्ष्म विश्लेषण एवं संप्रेषण में साही का काव्य विशेष रूप से कामयाब रहा है । अपने समय की सारी काव्य-प्रवृत्तियाँ उनकी रचनाओं में अनुगुँजित हैं ।

तीसरा अध्याय
===========

साही का

समाज-चिन्तन और साहित्य

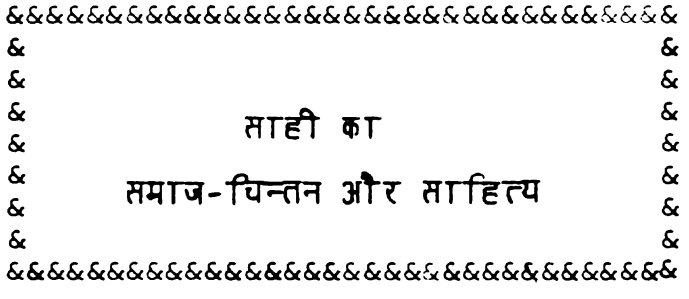

तीसरा अध्याय

साही का समाज-चिन्तन और साहित्य

समाज-चिन्तन व्यक्ति की सामाजिक समझ का परिणाम है । एक सामाजिक की हैसियत से व्यक्ति का अपना कुछ दायित्व तो समाज के प्रति अवश्य रहता है । सचेत व्यक्ति अपने समाज का समग्रबोध प्राप्त कर लेता है । उस समाज की ज्वलन्त समस्याओं से निरन्तर प्रतिक्रिया करता भी रहता है । परिणामत: उसके मन में एक स्वस्थ समाज का अवबोध अवश्य रूपायित होता है । उसको सार्थक पाने के लिए ही व्यक्ति या साहित्यकार अपनी रचना को उसका माध्यम बना लेता है । साही एक ऐसा साहित्यकार है जिनका सामाजिक चिन्तन सुस्पष्ट है । व्यक्ति के संबंध में साही की मान्यता है कि उसको अपने व्यक्तित्व को बनाये रखते हुए सामाजिक व्यवस्था के लिए संघर्ष करना चाहिए । व्यक्ति के व्यक्तित्व का अलग मूल्य ज़रूर है । समाज के सदस्य होने की वजह से उस का समाज के साथ निकटतम संबंध होना भी चाहिए । सामाजिक मूल्यों के बदलते संदर्भ में व्यक्ति को सतर्क रहना अनिवार्य है । व्यक्ति को अपने अलग व्यक्तित्व को बनाये रखते हुए स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के लिए संघर्ष करना चाहिए । व्यक्ति और समाज के बीच का रिश्ता अटूट है फिर भी व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व को अलग रखना अनिवार्य है । समाज में व्यक्ति की हैसियत क्या है,

समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण कैसा होना चाहिए ये सब समाज-चिन्तन के पहलुएँ हैं । "तीसरा सप्तक" की भूमिका में कवि साही ने भी इस विषय संबंधी अपनी मान्यता एवं विश्वास व्यक्त किया है ।

साही का समाज

साही के द्वारा निर्धारित पच्चीस शीलों में समाज संबंधी उनका स्पष्ट दृष्टिकोण मौजूद है । उनकी राय में समाज ऐसा होना चाहिए, जहाँ व्यक्ति को सभी प्रकार की स्वतंत्रता हो । जो वह चाहता है वह मिलनेवाला समाज । समाज में हर एक व्यक्ति का अपना अधिकार एवं कर्तव्य होता है । साही की समाज संबंधी मान्यता यह है कि एक ऐसा समाज हो जो व्यक्ति से कुछ माँगता नहीं पर व्यक्ति की माँगों को वह पूरा करे । साही के समय का समाज कई प्रकार की अराजकताओं से भरा हुआ समाज था । वहाँ अन्याय एवं अत्याचार का बोलबोला था । उस समाज का उन्होंने तिरस्कार किया और अपनी मानसिकता के अनुसार वर्तमान से बिलकुल भिन्न एक समाज की कल्पना की । वह समाज है व्यक्ति से कुछ न माँगनेवाला समाज । नई कविता में व्यक्ति और समाज के साथ यह समन्वित दृष्टिकोण स्पष्ट है । नया कवि समाज का नज़रअन्दाज़ करते हुए व्यक्ति-सत्ता पर ज़ोर नहीं देता । दोनों की भूमिकाओं की प्रमुखता को वे मानकर ही चलते हैं । पर साही ने समाज के प्रति

जो अवज्ञा प्रकट की है वह वर्तमान समाज की कुरीतियों एवं अनाचारों के कारण है -"अवज्ञा परमोधर्म: ।"[1] सामाजिक अत्याचारों एवं अनाचारों के प्रति कवि की अवज्ञा वास्तव में उनके स्वस्थ समाज-चिन्तन का परिणाम है । साही की मान्यता है कि समाज का सुधार एवं परिष्कार करना साहित्यकार का काम नहीं बल्कि समाज-सुधारकों का है । उन्होंने एक संदर्भ में बडे व्यंग्य के साथ सूचित किया है कि अगर किसी को समाज का सुधार करना है तो प्रधानमन्त्री बनना अच्छा होगा । क्योंकि साहित्य व्यक्ति का कर्तव्य नहीं ; वह कवि की अनिवार्यता है । मतलब समाज का सुधार भी साहित्य से संबंध रखनेवाली बात नहीं, यही साही का अभिप्राय है । यों व्यक्ति सत्ता की अद्वितीयता पर, उसकी अनिवार्यता पर, बल देकर साही अपना समाज-चिन्तन प्रस्तुत करता है । हिन्दुस्तान की वर्तमान राजनीति तथा उस में होनेवाले परिवर्तनों पर भी साही का कोई विश्वास नहीं । क्योंकि उसके अनुसार यह बदलाव बिलकुल बेकार है, सिर्फ लहरों के उठने-गिरने की तरह है, "एक मंत्री आता है दूसरा मंत्री जाता है कोई फर्क नहीं पडता ।"[2] स्पष्ट है कि साही का समाज-चिन्तन तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति से असन्तुष्ट होकर रूपायित हुआ है । इसलिए एक ओर अवज्ञा है तो दूसरी ओर संघर्ष और समाज-व्यवस्था की ललक है ।

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही का वक्तव्य - पृ. 178
2. पूर्वग्रह - सं. अशोक वाजपेइ - अंक 65 - साही का लेख - पृ. 36

साही और राजनीति

समाजवादी आन्दोलन ने साही को गहराई से प्रभावित किया था इसलिए उनमें राजनैतिक भावना जागृत हुई । इसके अलावा उन पर आचार्य नरेन्द्रदेव की मेधा, कुशाग्रता और राष्ट्रीय दृष्टि की ऐसी छाप पडी कि वे अपनी "कुटुम्ब की सिविल सर्वीस की परंपरा त्यागकर" राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पडे ।[1] काशी में आकर तत्कालीन आन्दोलनों में शामिल होकर, मार खाते, जेल जाते साही में मार्क्सवादी दृष्टि निखर उठती है । उनका मार्क्सवाद से प्रभावित होने का यही कारण है । साही पहले मार्क्सवादी थे । उस दर्शन का प्रभाव उन पर अवश्य पडा है । लेकिन बाद में उन्होंने मार्क्सवाद को छोड़ दिया । मार्क्सवाद के संबंध में स्वयं मार्क्स ने यों माना - "अच्छे जीवन को प्राप्त करने के लिए नये मनुष्य की खोज और परिभाषा आवश्यक है ।"[2] साही ने मार्क्सवाद की यांत्रिकता से बचने का आग्रह किया । उन्होंने मार्क्सवाद को केवल राजनैतिक कसौटी मानी । अतः उनकी दृष्टि में साहित्य के लिए मानव-मूल्य की कसौटी ही चाहिए जो क्रमशः प्रमुख होती जा रही है । साही की यह दृष्टि उनके जीवन के अन्तिम समय तक परिवर्द्धित होती ही रही । उसमें संशोधन नहीं बल्कि परिवर्धन ही हुआ है । सामाजिक दृष्टिकोण का उक्त पहलु उनकी आलोचनात्मक रचना "जायसी" (1983) में द्रष्टव्य है । इसमें साही ने जायसी को मानवीयता की दृष्टि से आंकने का

---

1. पूर्वग्रह-65 - सं. अशोक वाजपेइ - वीरेन्द्र कुमार का लेख - पृ. 8
2. दि मार्क्सवाद - सी. राइट मिल - पृ. 41

प्रयत्न किया है, न कि किसी सिद्धान्त के तहत पर । बाद में साही राम मनोहर लोहिया की ओर आकृष्ट हो जाता है । क्योंकि बहुत सारी बातों में साही का चिन्तन लोहिया के चिन्तन से मेल खानेवाले थे ।

लोहिया का समाज-चिन्तन

राम मनोहर लोहिया मानव-मूल्यों के हिमायती थे जिस से वे करोडों की भलाई एवं कल्याण चाहते थे । वे मानव-मूल्यों की गिरती स्थिति पर चिन्तित थे । समाज की अनीति एवं असमत्व से वे त्रस्त थे । उनकी परिकल्पना ऐसे एक स्वस्थ समाज की है जहाँ सभियों का समान अधिकार हो ।

व्यक्तियों के समूह से समाज बनता है, पर समाज का वास्तविक अस्तित्व तभी होता है जब उसमें व्यक्ति हो । व्यक्ति-विहीन समाज का कोई मूल्य नहीं है, "यह तो ठीक उसी तरह की बात होगी जैसे जल बिना मछली या जलविहीन नदी ।"[1] साही की समाज-संबंधी परिकल्पना भी बिलकुल इसी प्रकार की है । लोहिया तत्कालीन भारत को बदलने की बात पर चिन्तित थे । वे राजनीति

---

1. राम मनोहर लोहिया आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक विचार - कृष्ण नन्दन ठाकुर - पृ. 204

के क्षेत्र में उन्नत मूल्यों को प्रतिष्ठित करना चाहते थे । उनकी इच्छा थी कि अपने देश के मंत्री देश के शेष नागरिकों के सामने ठोस आदर्श बने । उनकी दृढ धारणा थी कि बिना संघर्ष के कभी किसी नई चीज़ का जनम नहीं होता । संघर्षधर्मी व्यक्तित्व साही के मन में तभी से लोहिया के विचार ज़ोर पकडने लगे थे । दोनों रक्त-रंजित सशस्त्र क्रान्ति के विरुद्ध थे । अत: साही और लोहिया शांतिपूर्ण संघर्ष द्वारा समाज को बदलने के पक्ष में थे । अपने मौलिक चिन्तन एवं शुद्ध राजनीतिक जीवन द्वारा लोहिया भारत की सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना चाहते थे । उन्होंने अपने चिन्तनशील मस्तिष्क के नवीन दृष्टि-बिन्दुओं से पुरानी रूढ मान्यताओं को मिटाने का कार्य किया । नई कविता में परंपरागत सामाजिक मूल्यों को बदलने तथा नये मूल्यों की तलाश करने के पीछे इस चिन्तन का गहरा प्रभाव पडा है । साही सामाजिक यथार्थ की गहराई में उतरनेवाला व्यक्ति है । इसलिए उनकी कविता में सामाजिक असंगतियाँ पूरी तीक्ष्णता के साथ अनावृत हुई हैं । उनकी आस्थावादिता के कारण ही सामाजिक असंगतियों के प्रति उन्होंने अवज्ञा प्रकट की है । ऐसे संदर्भ में राम मनोहर लोहिया की भारतीय मानस की समझ, जूझने का अदम्य एवं अकेला साहस, कर्मठता और संकल्प साही के लिए निरन्तर प्रेरक शक्ति रहे हैं । उन्होंने साही की जीवन-दृष्टि को ढाला, उनके वैयक्तिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण को ठोस धरातल प्रदान किया । लेकिन वे लोहिया के अन्धानुयायी नहीं थे बल्कि श्रद्धासमन्वित आलोचक भी थे, "लोहियाजी पर उनकी भक्ति थी, पर वे उनके अन्धानुयायी नहीं थे ।"[1] साही जी अध्यापक,

---

1. लोकतंत्र की कसौटियाँ - विजयदेव नारायण साही - मधुलिमये की भूमिका - पृ. ।।

साहित्यकार तथा राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में लोहियाजी से ऋणी है । अत: उनके समाज-चिन्तन के रूपायन में लोहिया के विचारों का प्रभाव निर्विवाद का है ।

कविता और समाज

समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया में कविता की क्या भूमिका है, उसकी क्या हैसियत है ये भी समाज-चिन्तन के साथ विचारणीय हैं । क्योंकि कविता का भी अपना एक समाज होता है जो वर्तमान सामाजिक असंगतियों से मुक्त, स्वच्छ तथा आदर्श का होता है ।

स्वाधीनता परवर्ती भारतीय समाज में जिस मोहभंग का वातावरण उत्पन्न हुआ उसने तत्कालीन कविता को काफी आन्दोलित किया है । यद्यपि साही ने पहले ही सूचित किया था कि वे विचार-धारा से समाजवाद के हिमायती हैं वे परंपरा पर विश्वास नहीं करते और उनकी राय में कविता से समाज का उद्धार नहीं हो सकता, कविता करना समाज के नागरिक का कर्तव्य भी नहीं है, तथापि कविता और समाज के बीच एक अटूट संबंध है । अपने शील में बतायी गयी आस्था के परिचय मात्र से हम कह सकते हैं कि साही की काव्यगत मान्यतायें व्यक्तित्ववादी तथा समाजवादी है ।

समता के वक्ता साही

भारत में समाजवादी आन्दोलन केवल राजनीतिक आन्दोलन नहीं रहा, यह पहले बता चुका है । यहाँ का समाजवाद एक बृहतर रूप में फैला गया आन्दोलन था । समाजवादी आन्दोलन के अन्दर साही मात्र चिन्तक नहीं बल्कि कर्ता भी है । समता उनके लिए एक अर्थपूर्ण अवधारणा थी और उन्हें कर्म करने को प्रेरित करती थी । श्री वीरेन्द्र कुमार भटाचार्य की राय में, "समता की अवधारणा का असर उनके अन्य माने हुए जीवन-मूल्यों पर भी था - न्याय निष्पक्षता, दृढता, सरलता इत्यादि ।"[1] उनके लिए बनने (becoming) की प्रक्रिया वैयक्तिक और सामाजिक दोनों थी । वे इस बनने की कोशिश के प्रति हमेशा सजग और ईमानदार रहे । इसलिए साही के शब्दों एवं कर्मों का असर उनके मित्रों और साथियों पर पड़ा । तब स्वाभाविक रूप में एक चिन्तक के मुँह से प्रश्न उठेगा कि साहित्य क्या है ? लेखक की जिम्मेदारियाँ क्या हैं ? साहित्य और समाज का सही रिश्ता क्या है ? साही एक सजग बुद्धिजीवि होने की वजह साहित्य को उन्होंने व्यापक अर्थ में देखा । साहित्य, उनकी राय में, मानव की अपनी अस्मिता को ब्रह्माण्ड से जोडता है । खंड सत्य को अखंड संपूर्ण सत्य से जोडनेवाला है साहित्य । इस अखण्ड एकता को पाना आसान कार्य नहीं । लेकिन विचारक, समाज-चिन्तक साही ने इसे पाया । उन्हें लगता है कि लेखक के दायित्व चार स्तर पर हैं - सामाजिक, पारिवारिक, मानवीय और वैश्विक । ये विभाजन अवधारणात्मक है ।

---

1. पूर्वग्रह-65 - सं. अशोक वाजपेई - वीरेन्द्रकुमार का लेख - पृ. 6

बिना इस अखण्ड संपूर्ण चेतना के साहित्य एकांगी बनकर रह जाता । साहो का विश्वास था कि विभिन्न साहित्यिक दृष्टियाँ अवधारणात्मक हैं, वे ज़िन्दगी यथार्थ और साहित्य से आलोचक या सर्जक के साक्षात्कार को ही प्रतिफलित करती है । समाज को बदलना है तो समता के लिए संग्राम चलता है, चलता रहेगा । आदमी के पेट और दिमाग दोनों की भूख शान्त होनी है और साहित्य को यहाँ और इसी क्षण के साथ वैश्विक चेतना का सामंजस्य करना है । यह हो सकता है कि लेखक और आलोचक प्रारंभ में अपनी दृष्टि को यथार्थ के किसी एक स्तर पर सीमित कर ले परन्तु उस संपूर्ण को न भूलना चाहिए । क्योंकि साहित्य मनुष्य के मन को बनाता है और परिवर्तित-परिवर्द्धित करता है ।

साहो का साहित्यिक और राजनैतिक लेखन काफी है क्योंकि साही की विश्वदृष्टि बारीकी थी, और उनका दिमाग स्वतंत्र । वाँछनीय दिशा में बदलाव के लिए हम भारतवासी उत्सुक हैं । पर वाँछनीय दिशा का अर्थ हर एक के लिए अलग अलग है । विचारक साहो इस लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे । साहो प्रकृति के प्रति उन्मुख और सजग रहने के कारण कविता उनके लिए गहरा और बारीकी एहसासों का माध्यम बन गयी है । ये एक समाज-चिन्तक व्यक्ति एवं कवि के मन से उभरनेवाली बातें हैं -

"दो तो ऐसी निरीहता दो
कि इस दहाडते आतंक के बीच
फटकार कर सच बोल सकूँ

और इसकी चिन्ता न हो
कि इस बहुमुखी युद्ध में
मेरे सच का इस्तेमाल
कौन अपने पक्ष में करेगा ।"[1]

साही लेखक और वक्ता दोनों रूपों में हिन्दी की संभावनाओं, शक्तियों तथा समस्याओं को अच्छी तरह पहचानते थे जो एक चिन्तक से सरोकार रखनेवाली बात है । एक समाज-चिन्तक की डायरी से निम्न लिखित टिप्पणी उद्धृत है जो साही ने स्वयं लिखा है -

"भारत का पूँजीपति अधिकतर मारवाडी है और उसकी जातीय नीचता, डरपोकपन और लोलुपता ही आज इस वर्ग की विशेषता बन गई है । पाश्चात्य अर्थ संघटन में जिसे "एन्टरप्राइज़" - साहस - कहते है उसका तो यहाँ नामोनिशान भी नहीं है । नतीजा यह है कि वह एक एक पैसे को दान्त से पकडता है और सब से पहले "सिक्योरिटी" खोजता है । यों तो वह वर्ग सारे संसार में स्वार्थी और अपने शरीर में ही रत होता है लेकिन मारवाडी में यह गुण कुछ विशिष्ट मात्रा में होता है । इसके लिए वह जूते चाटने से लेकर खटमल की तरह रक्त चूसने तक का काम कर सकता है । मुकदमे के एक साधारण भय के कारण जिस बेहयायी से गोयनका के मुनीम माधवप्रसाद मेरे पास चक्कर काट रहे हैं और मेरी खुशामद कर रहे हैं उसे देखकर नफरत होती है । यही शख्स है कि मौका पडने पर दो पैसे के लिए, मुझे बेइज्जत करने और सैकडों मज़दूरों को तरसा तरसा कर मार डालने से भी बाज

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 148

नहीं आयेगा । आज फिर वह मोटर लेकर मेरे पास आया ।"[1] यह 16-12-1949 को साही द्वारा लिखी डायरी के पन्ने से है जिसमें समाज के उक्त वर्ग के प्रति उनकी दृष्टि हम अनुमान कर सकते हैं । ऐसे समाज के परिवर्तन की आवश्यकता पर भी साही ने अपने भाषण में ज़ोर दिया था और यहाँ की वर्तमान निश्चलता पर बेहद दुख प्रकट करता है - "अब अगर फिर मैं तुलसीदास के समय की ओर जाऊँ तो उनके चारों तरफ भी बहुत सी घटनाएँ घटित हो रही थीं । उस समय के भी विचारक उस समय के भी कवि थे और अच्छे अच्छे द्रष्टा थे । राज बनते थे, उलटते थे । एक भाई ने दूसरे भाई को मार डाला गद्दी पर बैठ गया । आज यहाँ पर एक राजा है, कल दूसरा राजा आया उसने भगा दिया उसको....."[2] तो साही का निष्कर्ष यही है कि हमारे अन्दर कोई अन्तर नहीं आया है, - "बीसवीं शताब्दी में वह आदमी पहुँच गया चन्द्रमा पर । हम तो यहीं बैठे है बैलगाडी पर । अत: हमारे अन्दर कोई अन्तर नहीं है ।"[3] यह भी समाज संबंधी साही की अपनी मान्यता है । क्योंकि साही के मतानुसार हम चाहे जितना प्रयास करे अब हम अमेरिका जैसे नहीं हो सकते, हम को कोई दूसरा रास्ता स्वीकार करना पडेगा । बदलाव की असंभाव्यता की ओर संकेत करते हुए ही साही ने लिखा -

---

1. पूर्वग्रह - 65 - सं. अशोक वाजपेई - पृ. 23-24
2. पूर्वग्रह - सं. अशोक वाजपेई - साही का लेख - पृ. 36
3. पूर्वग्रह - सं. अशोक वाजपेई - साही का लेख - पृ. 37

"नीचे के जीवन में
कुछ भी बदलता नहीं
वह उजियाली धूप
खुली हुई दोपहरी
फनगी पर फूली हुई चिड़िया अनुभूति-मग्न
बाहर से आती हुई
मिली जुली नर्म नर्म आवाज़ें, खामोशी
और वही
बरसों से मानी हुई विस्मृत विषाद ग्रन्थि ।

×× ×× ×× ×× ××
×× ×× ×× ×× ××

कुछ भी बदलता नहीं ।"[1]

इस सिलसिले में एक बहुत अच्छी एवं थोड़ा लंबी कविता है "अस्पताल में" । यों वह अस्पताल के बारे में है, लेकिन साही का समाज-चिन्तन वहाँ भी विवृत होकर कविता के समाप्त होते होते वह हमारी दुनिया के बारे में भी हो जाती है । इस कविता में चरित नायक रोगी का डाक्टर से संवाद है अपनी पीड़ा के बारे में और

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 14-15

पडोसी रोगी की पीडा और उससे होनेवाली उलझन के बारे में । पीडा, सहवर्ती पीडा, उपचार और शमन, पीडा का स्थानांतरण, अपनी पीडा दूसरों के लिए, उलझन, पीडा की बिरादरी जैसे अनेकानेक मार्मिक प्रसंग इस में बहुत सादगी और स्पष्टता के साथ उठते हैं जहाँ कवि का सामाजिक बोध और भी बलवती हो जाता है जैसे,

"बगल के कमरे में कोई घायल है
जो रात भी कराहता है
इस अस्पताल में दिन तो किसी तरह
कट जाता है
कभी डाक्टर आते है कभी नर्सें आती हैं
कभी जमादार आकर झाड़ू दे जाता है
और नहीं तो अपनी सुविधानुसार
दोस्त कुटुम्बी आते हैं
हाल चाल पूछ जाते है ।
×× ×× ××
मैं ने डाक्टर से पूछा
क्या इसको यहाँ से हटाया जा सकता ?
×× ×× ××
मैं ने कातर होकर पूछा
आखिर यह कब तक कराहता रहेगा
मेरे लिए रात काटनी मुश्किल हो गयी है ।"[1]

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 114-115

समाज और राजनीति

एक समय था कि धार्मिक संस्थाओं और उनके प्रतिनिधियों का आधिक्य सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं पर रहा । उस समय की बहुत सारी समस्यायें धर्म और धार्मिक संस्थाओं से परिचालित थीं । धर्म के इस आधिपत्य का एक कारण प्राकृतिक रहस्यों के संबंध में तत्कालीन मनुष्य की सीमित जानकारी थी । दूसरा कारण पुरोहित वर्गों और धार्मिक संस्थाओं का उदय तथा समाज के अन्य वर्गों पर उसका आधिपत्य था । अतः इस युग का प्रमुख साहित्य मात्र धार्मिक साहित्य रहा क्योंकि लिखने का अधिकार केवल पादरियों को था । यूरोप में यह विशिष्ट वर्ग पादरियाँ और दक्षिण-पश्चिम ऐशिया में मौलवियाँ थे । इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म के ऐसे एकमात्र एवं सशक्त अधिकार का परिणाम साहित्य और कला पर पडा । संगीत, शिल्प आदि जो कुछ भी थोडा बहुत था वह चर्च (Church) के भीतर सीमित हो गये और उन्हें धर्म के प्रचार एवं धर्म संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र बनाकर रखा गया । कालान्तर में 14 वीं शती से ईरान के अभ्युत्थान में साहित्यिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण हुआ और 15 वीं शती में यूरोप में वही एक नई धारा - रिनेसन्स - के फलस्वरूप शताब्दियों का लम्बा अन्धकार दूर हो गया । अब मध्यकालीन वातावरण के बिलकुल भिन्न एक नई संस्कृति, नये साहित्य और कला का निर्माण हुआ । मध्यवर्ग इस नई धारा का वाहक बन गया । उसने सामन्त युग का विनाश किया और

राष्ट्रीयता को जनम दिया । इस प्रकार एक नये माहौल का जन्म हुआ और उसका आधिपत्य एक नये वर्ग के हाथ आ गया । इस नई ऊर्जा को राजनीति कही गयी । मतलब धर्म का स्थान अब राजनीति ने ले लिया । नये वातावरण की नई पृष्ठभूमि में समाज और विज्ञान की वृद्धि होती गई और राजनीति का भी विस्तार एवं विकास होता गया । इसके परिणामस्वरूप एक और बात हुई कि यहाँ राजनीति और साहित्य का संबंध सुदृढ़ एवं सच्चा हो गया । राजनीति से विजयदेव नारायण साही का रिश्ता यहाँ प्रासंगिक हो जाता है । याने राजनीति और साहित्य के सरोकार को लेकर साहित्यकारों के सम्मुख जब समस्या उठी तब साही ने अपने भाषण में दोनों के आपसी रिश्ते पर ज़ोर दिया ।

राजनीति और साही

राजनैतिक गतिविधियों से साही का संबंध पहले ही था । साही की राय में -"उठती हुई जनता का साहित्य अनिवार्यतः एक बडे अंश में राजनीति से प्रभावित होगा इसलिए कि राजनीति जनता के उत्थान का आवश्यक माध्यम है ।"[1] जब हिन्दी कविता में राजनैतिक स्वर की बाढ थी साही की कविता का स्वर राजनीतिक रहा और जब "राजनीतिक स्वर अप्रभावी ही नहीं ऊबाऊ हो गया

---

1. छठवाँ दशक - विजयदेव नारायण साही - पृ. 18

तब उनकी कविता में यह बड़े धीरे से प्रवेश कर गया ।"[1] साही के लिए कविता कभी राजनीति का स्थानापन्न नहीं रही । क्योंकि वे राजनीति से सीधे जुड़े हुए थे । वास्तव में कविता उनके व्यक्तित्व के दूसरे पक्ष को उजागर करने की विधा थी । उनकी "साखी" शीर्षक संकलन की कविताओं में प्रखर राजनैतिक चेतना का बोध उभरता है । अपनी कविता के साथ राजनीति को जोड़ना है तो उस संदर्भ में राजनैतिक कविता का जो स्वरूप निर्णीत होगा उसकी काफी व्यापकता है । अर्थात् तब कविता का वैज्ञानिक स्तर स्वत: बनता है । उस प्रकार के संदर्भगत व्यक्ति का संकल्प जब तक कविता में जुड़ता नहीं तब तक कविता के साथ राजनीति को या राजनीति के साथ कविता को जोड़ने की ज़रूरत नहीं । इसी संदर्भ में साही ने अपना मन्तव्य इस तरीके से व्यक्त किया, "कविता को राजनीति में नहीं घुसना चाहिए । क्योंकि इस से कविता का तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, राजनीति के अनिष्ट की संभावना है ।"[2] साही ने अपनी बात व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत की है । इसलिए अनिष्ठ को संभावना वे राजनीति के लिए मानते हैं । इस से ही यह स्पष्ट होता है कि कविता को राजनीति में घुसकर वाँछित अर्थ देने में नहीं, घुसना जैसे क्रियावाची शब्द से ही उनका उद्देश्य स्पष्ट होता है ।

---

1. दस्तावेज़ -51 - सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - श्रीप्रकाश मिश्र का लेख - पृ. 36
2. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही का वक्तव्य - पृ. 175

नवजागरण काल से राजनीतिक परिदृश्य को और तत्संबंधी समस्याओं को कविता के कथ्य के रूप में संकलित किया जिस से कविता के अनुभूत्यात्मक स्तर पर कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं हुआ है । संक्षेप में कहे तो राजनीति, साही के मत में, "सहूलियत की राजनीति" बन गयी है । इसलिए साही राजनीति और कविता को दोनों के हित में अलग अलग रखने के पक्ष में हैं ।

साहित्य और समाज

समकालीन साहित्य की एक खास प्रवृत्ति है समग्रता की स्वीकृति । जीवन को समग्रता या संपूर्णता के साथ देखने को रीति को समग्रताबोध कहते हैं । फिलहाल सामाजिक जीवन का ऐसा कोई पहलू अछूता नहीं रहेगा जो समकालीन साहित्य का अपना विषय न बना हो । समकालीन कवि होने के नाते साही की दृष्टि भी हमेशा समग्रता पर थी । वे ज़िन्दगी को टुकड़ों में बाँटकर नहीं देख पाते ताकि उन्हें साहित्य भी एकांगी ढंग की चीज़ नहीं । साही की यह समग्र-दृष्टि अपने चिन्तन के आद्यन्त वर्तमान है । वे मानव की अपनी अस्मिता को ब्रह्माण्ड से जोड़ने का प्रयास करते थे । जीवन को समग्रता के साथ समकालीन साहित्य ने आत्मसात कर लिया है । इसलिए साही की रचनाओं में भी समसामयिक जीवन की गन्ध अवश्य रहती है । मोहभंग समसामयिक जीवन का पहला पहलू है ।

आज़ादी के बाद भारतीय समाज में जो मोहभंग छा गया उसका सही दस्तावेज़ साही की रचनाएँ हैं । स्वतंत्रता वाँछित फल प्रदान करने में जब असमर्थ हुई तब जनता की आस्था विघटित होने लगी तथा मोहभंग की गहरी खाई में अपने को पाने लगी । मन की इस अवस्था को चित्रित करने में समकालीन कवियों की लेखनी विवश रही । साही के लिए जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति है अपनी कविता । अतः अपने परिवेश की सारी प्रवृत्तियों का वहन करते हुए उनकी रचनायें आगे बढ़ती हैं । साही प्रमुखतः वर्तमान जीवन के विघटन का कवि है । वे, "मानवीय लघुता को मूल्य मानकर चलते हैं, इस दृष्टि को अपनाने के कारण उनकी कविता में पराभव और ग्लानि के चित्र ही अधिक मिलते हैं ।"[1] उन्होंने आज के व्यक्ति की नियति को अच्छी तरह पहचाना है । क्योंकि साही को मालूम है कि कविता का रिश्ता ज़िन्दगी के उलझन, तनाव और मिठास से है । तत्कालीन परिवेश से उद्भूत इस बेसहारेपन की मानसिकता नई कविता के केन्द्र में रही है और उसको समकालीन कविता ने प्रश्रय दिया भी । साही का साहित्य समकालीन समाज की इस दुखद अवस्था का भी अंकन करनेवाला है । आदमी का प्रस्तुत थका-हारा व्यक्तित्व,

"विक्षत सामर्थ्य की पुकारों पर झुकी नहीं
और इस आखिरी पड़ाव तक
तू ने क्षत चरणों से
आंक दी स्पृहा की रेखा कोरी मरुभूमि पर"[2]

---

1. नई कविता सिद्धान्त और सृजन - नरेन्द्र वर्मा - पृ. 80
2. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 181

जैसी पंक्तियों में खूब निखर उठता है । इस प्रकार साही के समाज-चिन्तन में आधुनिक कविता के मुख्य स्वरों को प्रतिध्वनित किया गया है । समाज की धड़कनों को आत्मसात करने में साही कामयाब बन गये हैं ।

निस्सहायता की अनुगूँज

साही के मत में समाज के विभिन्न वर्गों में एक प्रकार की बेचैनी छा गयी है । बौद्धिक वर्गों में भी इसकी उथल-पुथल होने के कारण कला-साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में एक प्रकार का गतिरोध आ गया है । उन्हीं के शब्दों में -"वह टहरकर सड़ रहा है, टूट रहा है । सड़ने या टूटने की प्रक्रिया में रत इस व्यवस्था के प्रति आज का बौद्धिक वर्ग भी उन्मुख है ।"[1] समाज के चारों ओर के वातावरण में छा गई इस बेचैनी का शिकार होकर आज मानव ज़िन्दा-मुर्दा सा जीवन बिता रहा है । इस से भी साही खिन्न है । साही की "विस्मृत विषाद ग्रंथियाँ" शीर्षक कविता में उन्होंने यों लिखा,

"क्षण भर को
कहीं एक
डूबा हुआ प्रश्न

---

1. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 10

उठता है तिरता है ओझल हो जाता है
कुछ भी बदलता नहीं।[1]

इसकी अंतिम पंक्ति विशेष विश्लेषणीय है कि यहाँ का कुछ भी बदलता नहीं यही हमारा अभिशाप है । अत: अस्वस्थ जीवन-परिवेश में अपनी निस्सहाय अवस्था पर सचेत मानव साही की रचनाओं में काफी हैं जो वर्तमान व्यवस्था की देन है ।

साहित्य में समसामयिकता

पुराने और नये साहित्य की तुलना करते हुए साही ने अपनी राय प्रकट की है । इस सिलसिले में युग-परिवर्तन का संकेत देते हुए कवि का कहना है कि साहित्य में एक रिक्तता और अविवेक का वातावरण भर गया है -"नये लेखकों के प्रति पुरानी पीढ़ी का दृष्टिकोण गहन वितृष्णा का है ।"[2] वे आगे कहते हैं -" नई पीढ़ी में साधना के होने का कोई अर्थ नहीं, बल्कि उनमें प्रतिभा की ज़रूरत है ।"[3] अत: दोनों पीढ़ियों के बीच की खाई को भरने योग्य नई बातों, मान्यताओं एवं नूतन प्रतिभाओं की ज़बरदस्त वकालत के साथ साही आगे बढ़े हैं ।

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 14
2. छठवाँ दशक - विजयदेव नारायण साही - पृ. 101
3. छठवाँ दशक - विजयदेव नारायण साही - पृ. 101

क्योंकि युग की विशिष्ट चेतना या अनुभूति की अभिव्यक्ति, साही की राय में, नये साहित्यकारों के द्वारा होती है । यहाँ कवि साहित्य की समसामयिकता के नैतिक दायित्व की ओर भी इशारा करता हैं । क्योंकि समसामयिक समस्याओं को युग की समस्या के रूप में स्वीकारना अत्यन्त आवश्यक है । क्योंकि "आधुनिक बोध का दूसरा अर्थ वह बोध जिसे आधुनिक युग ने दिया है ।"[1] यहाँ साही का भी मन्तव्य यों हैं - "जहाँ परिवर्तन का क्रम न केवल नई दिशायें, नये संकेत देता है बल्कि पहले की पूछे गये प्रश्नों को फिर से पूछने के लिए बाध्य करता है, हम नहीं मानते कि हर नया गवाह न केवल नये विवाद प्रस्तुत करता है, बल्कि पुराने विवादों के संबंध में हमारे निर्णय को भी चुनौती देता है ।"[2] तो ऐसी हालत में समसामयिकता को नैतिक दायित्व समझना गलत नहीं होगा । साही की कविता की चर्चा के सिलसिले में हमें यह सहमति प्रकट करनी है कि हिन्दी की नई कविता ने काफी हद तक इस समसामयिकता को अनुभूत कराया है । समकालीन कविता का नामकरण ही कविता की इस मानसिकता के कारण हुआ है, मसलन साही की रचना समसामयिक है उनके समूचे साहित्य में सामयिक बोध अवश्य है । कवि का सामाजिक चिन्तन एवं साहित्य की यह समसामयिकता, युग की प्रासंगिकता कवि को समकालीन एवं उनके विचारों को युग-सापेक्ष्य बनाने में सक्षम हुए हैं । ऐसे एक समाज-चिन्तक कवि की मान्यतायें हर युग में प्रासंगिक होती अवश्य हैं ।

---

1. हिन्दी कविता सर्जनात्मक संदर्भ - राम दरस मिश्र - पृ. 63
2. छठवाँ दशक - विजयदेव नारायण साही - पृ. 139

चौथा अध्याय
==========

नई कविता के परिप्रेक्ष्य में साही की कवितायें

चौथा अध्याय

नई कविता के परिप्रेक्ष्य में साही की कवितायें

हर काव्यान्दोलन अपने पूर्ववर्ती काव्य-संस्कार से संघर्ष करते हुए जन्म लेता है । वह अपने आप जन्म लेता नहीं । हिन्दी कविता का इतिहास इस के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण है । छायावाद द्विवेदीयुगीन काव्य संस्कार से, प्रगतिवाद छायावाद से तथा प्रयोगवाद प्रगतिवाद से अपनी पृथकता अवश्य रखता है । नई कविता प्रयोगवादी मानसिकता के बहुत सारे तत्वों को स्वीकारते हुए आगे बढ़नेवाली काव्यधारा है । पर नई कविता की पूर्वपीठिका के रूप में प्रयोगवाद का स्थान निर्विवाद का है । तारसप्तक (1943) का प्रकाशन हिन्दी काव्य संवेदना को पूर्णत: बदलनेवाली साहित्यिक घटना रहा । लेकिन इसके पहले ही हिन्दी कविता में प्रयोग के नये अकुर फूटने लगे थे । "तारसप्तक" के प्रकाशन से चार-पाँच वर्ष पूर्व "तारसप्तक" के कवियों के अतिरिक्त केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, भवानीप्रसाद मिश्र जैसे अनेक समर्थ कवि नये ढंग की काव्य रचना कर रहे थे ।"[1] पर उसके भी पहले निराला, पन्त आदि की कुछ रचनाओं में परिवर्तन की सूचनायें मिल जाती हैं । डा. गिरिजाकुमार माथुर ने भी यही बात कही थी, "तारसप्तक" के प्रकाशन से पाँच वर्ष पूर्व ऐसी रचनायें हो रही थी तथा सन् 1940 के आसपास के कृतित्व में वह आधुनिक स्वर सबल और स्पष्ट होकर

---

1. कविता के नये प्रतिमान - नामवरसिंह - पृ. 87

सामने आ गया था ।"[1] निराला की "अनामिका", "कुकुरमुत्ता" जैसी रचनाओं से और "रूपाभ", "उच्छृंखल", "हंस" जैसी पत्रिकाओं के प्रकाशन से यह व्यक्त हो जाता है कि हिन्दी में "तारसप्तक" के पहले ही परिवर्तन की लहरें ज़ोर पकडने लग चुकी थीं ।

तारसप्तक का प्रकाशन

1943 में "तारसप्तक" का प्रकाशन इस बदली हुई मानसिकता की चरम परिणति है । नई कविता के विकास-क्रम में सप्तक काव्य परंपराओं की सशक्त भूमिका रही है जिनकी पहली सीढी है अज्ञेय द्वारा संपादित "तारसप्तक" । यद्यपि सप्तकों के बाहर भी प्रतिष्ठित कवियों की रचनायें सर्वमान्य रही हैं तथापि "तारसप्तक" से लेकर "तीसरा सप्तक" तक का समय आधुनिक हिन्दी कविता का सब से अधिक गतिशील समय रहा है ।

प्रयोग अर्थात् काव्य-सत्य की खोज

प्रथमत: हिन्दी कविता के इतिहास में "तारसप्तक" के कवियों के सम्मिलित प्रयास ने परंपरागत काव्य-चिन्तन पर प्रश्न-चिह्न

---

1. तारसप्तक - सं. अज्ञेय - गिरिजाकुमार माथुर का वक्तव्य - पृ. 193

लगा दिया है । अज्ञेय का प्रस्तुत कथन इस ओर संकेत है, "प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं । यद्यपि किसी एक काल में, किसी विशेष दशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है । किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं उन से आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया या जिनको अभेद्य मान लिया गया है ।"[1] स्पष्ट है कि इन कवियों का लक्ष्य काव्य-जगत् के अछूते संदर्भों का अनावरण करके अभिव्यक्ति का आयाम विस्तार करना ही था । यह सुविदित है कि आधुनिक हिन्दी कविता को नया सौंदर्यबोध और नई अर्थवत्ता प्रदान करने का श्रेय "प्रयोगवाद" को है ।

जहाँ तक काव्य सत्य की खोज का संबंध है, प्रयोगवादी कविता का कथ्य कवि की आत्मा से जुड़ा हुआ है । "कवि का कथ्य उनकी आत्मा का सत्य है । यह भी कहना ठीक होगा कि यह सत्य व्यक्तिबद्ध नहीं है, व्यापक है और जितना ही व्यापक है उतना ही काव्योत्कर्षकारी है ।"[2] लेकिन समाज में कवि अपने वर्तमान से बिलकुल असन्तुष्ट है । सब कहीं पराजय ही पराजय नज़र आता है । आशा की किरणें कहीं भी दिखाई नहीं देतो । ऐसे संदर्भ में प्रयोगवादी कवि जीवन के कृष्ण पक्ष को ही सत्य मानकर उसकी विस्तृत अभिव्यक्ति के लिए तैयार हो उठता है । यहीं प्रयोगवादी कविता सार्थक हो

---

1. तारसप्तक - सं. अज्ञेय - अज्ञेय का वक्तव्य - पृ. 270
2. तारसप्तक - सं. अज्ञेय - अज्ञेय का वक्तव्य - पृ. 270

उठती है और अपने समय के साथ जुड़ भी जाती है । प्रयोगवादी कवि अपनी कविता के माध्यम से आधुनिक मानव के वास्तविक जीवन-सत्य की तलाश कर रहे थे इसलिए कविता प्रयोगवादी बन गई तथा कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर नई नई संभावनाओं को तलाशने के लिए उसने खुरदरे रास्ते को अपना लिया । अतः प्रयोगवादियों के काव्य-सत्य की तलाश दर असल नये मानव की वास्तविकता की तलाश है या यों कहिए कि उसकी अस्मिता की तलाश है ।

विद्रोह की अनिवार्यता

प्रयोगवादी कवियों ने काव्य-सत्य को व्यापक बनाने के हेतु नूतन प्रयोगों पर बल दिया । अतः प्रत्येक संवेदनशील एवं सृजनात्मक प्रतिभा के लिए प्रयोग की प्रक्रिया से गुज़रना अनिवार्य बन गया, "जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे समष्टि तक कैसे पहुँचाया जाए वही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है ।"[1] निराला में जिस विद्रोह का स्वरूप मिलता है वह प्रयोगवादी कवियों में प्रयोग बन गया है । "प्रयोग की पृष्ठभूमि में विद्रोह हो, और विद्रोह की अगली कड़ी प्रयोग हो, यह उचित ही है ।"[2] विद्रोह की अनिवार्यता का धक्का सब से पहले काव्यगत "एप्रोच" पर लगा जिसे अकाल्पनिक "एप्रोच" का आरंभ कहे तो गलत नहीं होगा ।

---

1. तारसप्तक - सं. अज्ञेय - अज्ञेय का वक्तव्य - पृ. 27।
2. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्यायें - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 2

इस प्रकार नये प्रयोग और प्रतिक्रिया के बाहुल्य के साथ पूर्ववर्ती छायावादी तथा उत्तरछायावादी कविताओं से भिन्न जो कविता फूट पडी उसे आलोचकों ने प्रयोगवाद का नाम दिया । उसके मूल में विद्रोह की मानसिकता मौजूद है और वह कविता मूर्तिभंजक भी है । वह नई दिशा की तथा अभिव्यक्ति के नए नए संदर्भों की खोज करनेवाली कविता है, "एक दृष्टि से यह कविता भी पूर्ववर्ती कविता की तुलना में नई कविता हो थी । छठे दशक के प्रारंभ के साथ ही प्रयोग के अतिरिक्त उत्साह से मुक्ति पाकर हिन्दी कविता एक नई दिशा में मुड़ी ।"[1] इस प्रकार पूर्ववर्ती काव्य संस्कार के प्रति निषेध या विद्रोह को अपनाने की प्रवृत्ति प्रयोगवादी कविता में विद्यमान है । विद्रोह उसका एक अनिवार्य अंग बन गया । उसने कथ्य एवं शिल्प को जीवन्त तथा विस्तृत बनाने का कार्य किया । परिणामत: हिन्दी कविता का पूरा वातावरण ही बदल गया ।

बौद्धिक रुझान की प्रयोगवादी भूमिका

प्रयोगवादी कविता ने हृदय के स्थान पर बुद्धि को अपनाया है । सामयिक जीवन के सभी पहलुओं पर इसकी दृष्टि बौद्धिक रही । बौद्धिकता अपने आप एक विशेष प्रकार की प्रयोगशीलता है । "एमफसिस" बदलने के साथ साथ कल्पना का तथा अनुभूति का

---

1. नई कविता - सं. जगदीश गुप्त और साही - पृ. 3।

वृत्त व्यापक हुआ है और इसकी आधारशिला बौद्धिक वृत्ति है । मतलब भावुकता के स्थान पर बौद्धिक चिन्तन प्रबल बन गया, "अब व्यक्ति छायावादी नहीं उस में अब बौद्धिकता आ गई है, वह जो देखता है उस पर सोचना चाहता है, जो अनुभव करता है वह लिखना चाहता है ।"[1] स्पष्ट है कि बुद्धि ने प्रयोगवादी कविता में आकर हृदय का स्थान ग्रहण किया है । वह बौद्धिकता की छाया में विकास पाने लगी ।

प्रगतिशील कविता के प्रतिमान में बदलाव आने का भी कारण यही बौद्धिक वृत्ति है और इस के कारण कविता के आस्वादन का धरातल भी बदल गया है, क्योंकि बुद्धितत्व का प्रमुख अंश विचार ही है । अत: "आधुनिक युग की कविता केवल अनुभूत सत्यों या तथ्यों तक ही सीमित रहना नहीं चाहती, अध्ययन द्वारा ग्रहण की गई अनुभूतियाँ भी इस में अभिव्यक्त पा सकी । नई कविता बौद्धिकता की छाया में विकसित रही है ।"[2] कथ्य एवं शिल्प संबंधी सभी प्रवृत्तियों के पीछे एक प्रेरणा की भाँति यह बुद्धितत्व वर्तमान है और इसी कारण कविता में एक अन्तर्निहित आलोचनात्मकता भी मिलती है । बुद्धि और हृदय का वाँछित संयोग नई कविता का एक मुख्य तत्व इसलिए बन गया है ।

---

1. नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - मुक्तिबोध - पृ. 61
2. नई कविता स्वरूप और समस्यायें - जगदीश गुप्त - पृ. 102

कठोर यथार्थ का धरातल

बौद्धिक मानसिकता के कारण प्रयोगवादियों में यथार्थ ग्राहिता शक्ति बढ़ती गई । प्रगतिवादियों की तुलना में इन में गुणात्मक परिवर्तन अवश्य दिखाई देता है । भावावेश के स्थान पर वस्तुवादी दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह इन में है । उसका यथार्थ अपनी समकालीन जटिलता को ज़ाहिर करने का यथार्थ है याने प्रगतिशील मानसिकता है । प्रगतिशीलता को गिरिजाकुमार माथुर ने यों व्यक्त किया है, "जीवन के प्रति यथार्थ दृष्टि, कटु सत्य और नैतिक दायित्व की अभिव्यक्ति प्रगतिशीलता का आधार थी । कृतिकारों के सम्मुख ऐसा कोई विकल्प उपस्थित नहीं था जैसे बाद में चलकर हुआ । यह स्थिति 1940 से 1947-48 तक रही ।"[1] संभवतः यह समय के साथ संदर्भित होने का रवैया है और यही इसकी वह आधारशिला है जो नई कविता में आकर विस्तार पा गयी थी । प्रयोगवाद के रूप में नई कविता का जो बीज यहाँ बोया गया था उसका पल्लवन द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त होने लगता है । यहीं देश का सामाजिक-राजनीतिक पहलु रचना का विषय बनने लगता है । उस में यथार्थ बोध का पुट अवश्य है और उसका संबंध जीवन की वास्तविकता से है । इस प्रकार नई आवश्यकताओं एवं यथार्थों के धरातल पर अपनी अलग मानसिकता को तैयार करना आधुनिक रचना की विशिष्ट उपलब्धि बन गई है । इसीलिए नई कविता का यथार्थ युगीन एवं सामयिक बन जाता है ।

---

1. नई कविता सीमायें और संभावनायें - गिरिजाकुमार माथुर - पृ. 6।

वैयक्तिक गहराई

अनुभूति की प्रामाणिकता के संदर्भ में काव्य में व्यक्ति-चिन्तन का प्रारंभ होता है । वह समष्टिबोध को अनदेखा करके या सामाजिकता को हीन मानने की प्रवृत्ति नहीं है । कविता के समस्त कलात्मक मूल्यों को बनाये रखने तथा पारंपरिक-सैद्धान्तिक आग्रहों से मुक्त होने के लिए व्यष्टिपरक चिन्तन की अनिवार्यता है । प्रयोगशील कविता में यह स्पष्ट होने लगा कि व्यक्ति के साथ साथ समाज का भी अपना विशेष स्थान है । मुक्तिबोध, नेमीचन्द्र जैन आदि ने यह बात व्यक्त की है, "कविता समाज की सजीव इकाई के रूप में व्यक्ति को प्रधानता देती है, व्यक्ति के माध्यम से ही वह लोकमंगल तक पहुँचना चाहती है ।"[1] स्पष्ट है कि प्रयोगवादी कविता की व्यक्तिवादिता सामाजिकता से जुडी हुई है । दोनों का संतुलित रूप यहाँ द्रष्टव्य है । अज्ञेय ने "पंक्ति को दे दो" - कहकर इसी बात पर ज़ोर दिया है,

"यह दीप अकेला स्नेहभरा
गर्वभरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो"[2]

अत: इसी समय की कविता में वैयक्तिकता की जो तीव्रता है वह एक विशेष प्रकार की है जिसमें सामाजिकता की उपेक्षा बिलकुल नहीं है । याने कि नई कविता में जो व्यक्तिवादिता है उसकी शुरूआत

---

1. नई कविता स्वरूप और समस्यायें - जगदीश गुप्त - पृ. 172
2. कवितान्तर - सं. जगदीश गुप्त - अज्ञेय की कविता - पृ. 4

प्रयोगवाद में ही हुई थी इसमें मतभेद की गुंजाइश नहीं है ।

शिल्पपक्ष की नवीनता

प्रयोग के स्तर पर "तारसप्तक" की कविताओं में नवीनता मात्र कथ्य पर सीमित नहीं बल्कि शिल्प में भी है, "कुल मिलाकर प्रयोगवाद ने अधिक बल कविता के शिल्प-विधान पर दिया था । अनुभूतियों के क्षेत्र में भी उसने कुछ नवीनता का संचरण किया । अत: वह अनुभूतियों के चित्रण तथा शिल्प-विधान के क्षेत्र में एक प्रयोग ही था ।" नई शिल्प-प्रवृत्ति के कारण प्रयोगवादी कविता ने सब से पहले अपने को पुराने रूढ काव्यांगों से मुक्त कर लिया । कविता नये भावबोध एवं शिल्प-प्रयोग की ओर मुड गयी । यही उसकी प्रयोगशीलता की खासियत है । प्रयोगवाद की भाषिक संरचना में भी नई सर्जनात्मकता दृष्टव्य है । शब्दों में नये अर्थ भरने के लिए वे दृढ प्रतिज्ञ दीखते हैं । संक्षेप में, "तारसप्तक" के कवि भाषा के क्षेत्र में भी प्रयोगपरक दृष्टिकोण बरतनेवाले थे । वस्तुत: "तारसप्तक" सही अर्थ में नए के अन्वेषण, एक नई दिशा की खोज का परिणाम है ।

दूसरा सप्तक

"दूसरा सप्तक" का प्रकाशन 1951 में हुआ और

---

1. हिन्दी नवलेखन - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 31

इसका संपादन-कार्य अज्ञेय ने ही किया है । इस संग्रह के सात कवि हैं - भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, शकुन्त माथुर और हरिनारायण व्यास । इसकी भूमिका में अज्ञेय ने स्पष्ट किया है कि वे किसी वाद के नहीं बल्कि वादों की जंजाल से मुक्त होकर नये काव्य-सत्य की तलाश करनेवाले हैं । दर असल यह अभिमत "तारसप्तक" पर की गई आलोचनाओं का उत्तर था । आगे "दूसरा सप्तक" में भी कवि यही दोहराता है - "प्रयोग का कोई वाद नहीं । हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं । न प्रयोगवाद अपने आप में इष्ट या साध्य है । ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं ।"[1] स्पष्ट है कि वे कविता के प्रेमी ज़्यादा तथा गुटबन्दी कम थे ।

आत्म-वक्तव्य का मूल स्वर

"दूसरा सप्तक" के कवियों के आत्म वक्तव्यों से यह स्पष्ट है कि वे नये व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की तलाश में संलग्न हैं । इनका दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न आधुनिक भावबोध का है । सामाजिक यथार्थ से सजग होने के साथ ही साथ युग-जीवन का अनास्थापूर्ण वातावरण भी उनकी कविताओं में मुखरित होता है, "जिन परिस्थितियों एवं प्रेरणाओं ने प्रयोगवादी कवि को व्यक्तिवादी तथा अहंवादी बनाया उन्हीं ने उसे युग-जीवन के प्रति एक अनास्थामय दृष्टिकोण से

---

1. दूसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - भूमिका - पृ. 6

भी अभिभूत कर दिया ।"[1] यह युग सत्य शमशेर की रचनाओं में भी देखने को मिलता है -

"यह कौन मेरी धरती की शान्ति की आत्मा पर
कुरबान हो गया
अभी सत्य की खोज तो बाकी ही नहीं
यह एक विशाल अनुभव की चीनी दीवार
उठती ही बढ़ती आ रही है"[2]

इसका समर्थन डा. धर्मवीर भारती ने भी किया था । अत: "दूसरा सप्तक" में यथार्थ जीवन की पकड है उसे काव्य में संप्रेषित करने की क्षमता भी । इसी से कविता में युग-चेतना जीवन्त हो उठी है । दूसरी बात बौद्धिकता का विकास है । बुद्धिवादिता ने उसे बाह्य संघर्ष के लिए प्रेरणा दी है । अलावा इसके "दूसरा सप्तक" रोमान्टिक परिधान की दृष्टि से भी अधिक मनोरम है । इस प्रकार कथ्य की दृष्टि से "दूसरा सप्तक" "तारसप्तक" की अपेक्षा काफी विशाल एवं सूक्ष्म है ।

शिल्प के क्षेत्र में भी "दूसरा सप्तक" के कवियों ने बहुत आगे का स्थान पा लिया है । सबों ने बोलचाल की भाषा को अपनी कविता के लिए उचित समझा ताकि "दूसरा सप्तक" की

---

1. नया हिन्दी काव्य - डा. शिवकुमार मिश्र - पृ. 255
2. शमशेर कवितालोक - जगदीश कुमार - पृ. 141

भाषा साधारण व्यवहार के निकट आ गयी । भाषा संबंधी सादगी के लिए भवानीप्रसाद मिश्र की ये पंक्तियाँ पर्याप्त प्रमाण हैं –

"जी हाँ हुज़ूर मैं गीत बेचता हूँ
मैं तरह तरह के गीत बेचता हूँ
मैं किसिम किसिम के गीत बेचता हूँ
जी, माल देखिए, दाम बताऊँगा
बेकाम नहीं है काम बताऊँगा
कुछ गीत लिखे हैं मस्ति में मैं ने
कुछ गीत लिखे हैं पस्ति में मैं ने"[1]

भाषा संबंधी यह सरलता धर्मवीर भारती की कविता में भी है । उन्होंने भाषा को भावानुकूल होने का आग्रह प्रकट किया ।

"मैं विदुर हूँ
कृष्ण का अनुगामी, भक्त और नीतिज्ञ
पर मेरी नीति साधारण स्तर की है
और युग की सारी स्थितियाँ असाधारण है"[2]

शब्दों से अधिक द्योतित करने की क्षमतावाले बिंबों का प्रयोग शमशेर की कविताओं में देख सकते हैं जैसे –

---

1. गीत फरोश – भवानीप्रसाद मिश्र – पृ. 166
2. अस्मिता – सं. डा. जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव और जितेन्द्रनाथ पाठक – पृ. 37

"आज सब तुम्हारे ही लिए शान्ति का युग चाहते हैं
मेरी कुटुबुटु
तुम्हारे ही लिए मेरे प्रतिभाशाली भाई तेज बहादुर"[1]

इस प्रकार "दूसरा सप्तक" का शिल्प-पक्ष भी आधुनिकता से युक्त एवं जीवन से जुडा हुआ दिखाई पड़ता है । निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि दूसरा सप्तक ने हिन्दी काव्य को गतिशील बना दिया तथा अनास्था के घोर अन्धकार में आस्था की किरणें दिखा दी हैं ।

"दूसरा सप्तक" के प्रकाशन के साथ ही उसके पक्ष और विपक्ष पर विद्वानों का दल खडा हो गया । सप्तक काव्य के कथ्य एवं शिल्प को लेकर वहाँ विभिन्न मत प्रकट किए गए । इस चर्चा को अर्थवत्ता प्रदान करने में कुछ लघु पत्रिकाओं का योगदान विशेष उल्लेखनीय है । उन में प्रमुख हैं नये पत्ते, नई कविता, प्रतीक, निकष, अर्चना आदि । इन में "नई कविता" नामक पत्रिका का संपादन-कार्य अज्ञेय और विजयदेव नारायण साही दोनों ने मिलकर किया था । उनके इस सम्मिलित प्रयास ने हिन्दी काव्य जगत में नई कविता की प्रतिष्ठा को और तीव्र बना दिया । इन में नई रचनाओं के साथ ही नई काव्य-प्रवृत्तियों का गंभीर विवेचन भी हुआ था । कहने का मतलब यह हुआ कि नये साहित्य या नवलेखन

---

1. शमशेर कवितालोक - जगदीश कुमार - पृ. 140

को प्रतिष्ठित करने में इन लघु पत्रिकाओं का, खासकर "नई कविता" को भूमिका निर्विवाद रही है, "नव लेखन को पहली प्रतिष्ठा नई कविता के माध्यम से मिली"[1] - यह बात निर्विवाद की है ।

तीसरा सप्तक

सन् 1959 में "तीसरा सप्तक" का प्रकाशन हुआ । इस संग्रह में प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और विजयदेव नारायण साही की कवितायें सम्मिलित हैं । इन सात कवियों में विशेष उल्लेखनोय व्यक्तित्व है विजयदेव नारायण साहो का । "तीसरा सप्तक" के प्रकाशन के साथ नई कविता की सर्व-स्वीकृति हो जाती है । नई कविता मूलत: "एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की "पर्सनल सिटुएशन" की कविता है ।"[2] नई कविता पूर्ववर्ती सप्तक कालीन कविताओं से आगे का विस्तार है जिसने समग्रता के साथ सामयिक जोवन को नई संवेदना के धरातल पर स्वीकारा है । वह व्यक्ति-मन को प्रतिक्रिया होने के साथ ही साथ आधुनिक जटिल जोवन का दस्तावेज़ भी है, "नई कविता में इसलिए कहीं आत्मालोचन है, तो कहीं बाह्य स्थिति-परिस्थिति और समाज पर व्यंग्य है तो कहीं आर्थिक विवशताओं से उत्पन्न करूण भाव है तो कहीं ग्लानि है,

---

1. हिन्दी नवलेखन - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 183
2. नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - मुक्तिबोध - पृ. 54

कहीं वैकल्प्य-जनित विक्षोभ है तो कहीं जीवन-आलोचना है ।"[1] अतः नई कविता का स्वर वैविधपूर्ण है तथा उसका स्वरूप जीवन के नंगे यथार्थ से उभरा हुआ है । व्यक्ति और समाज के बीच कोई लकीर वह खींचती नहीं । कथ्य और शिल्प के सामंजस्य पर ही नई कविता ज़ोर देती है ।

नई कविता

नई कविता पर काफी चर्चा हो चुकी है । विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न ढंग से अपने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं । मुक्तिबोध के मत में, "वैविधमय जीवन के प्रति आत्म चेतस व्यक्ति की प्रतिक्रिया है नई कविता, नई कविता का स्वर एक नहीं विविध है ।"[2] नई कविता के एक एक पहलु को लेकर विद्वानों ने अपने अपने ढंग से उसकी परिभाषायें प्रस्तुत की हैं । डा. जगदीश गुप्त के शब्दों में, "नई कविता किसी प्रतिक्रिया से नहीं उपजी है वह आधुनिक मानस की सहज परिणति है..... वह जीवन को एक विशेष प्रकार से देखती है । विचार करने पर ज्ञात होता है कि प्रकृत्या यह दृष्टि ऋषि दृष्टि है ।"[3] स्पष्ट है कि नई कविता इसलिए

---

1. नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र - मुक्तिबोध - पृ. 54
2. नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध - मुक्तिबोध - पृ. 12
3. कवितान्तर - जगदीश गुप्त - पृ. 32-33

बहुआयामी है, उसकी दृष्टि प्रगतिशील है, आधुनिक परिवेश ही उसकी पृष्ठभूमि है, उसमें जड़ परंपरा का निषेध और जीवन्तता का वरण ज़रूर हुआ है ।

"तीसरा सप्तक" के प्रकाशन से जब नई कविता प्रतिष्ठित हो गई तब से विजयदेव नारायण साही तथा उनका साहित्य हिन्दी साहित्य-जगत में ज़ोरदार चर्चा का विषय बन गया था । क्योंकि नई कविता की समस्त अन्तर्धारायें साही की कविताओं में विद्यमान हैं । "तीसरा सप्तक" के प्रकाशन के साथ ही "नई कविता" पत्रिका में साही का आलोचनात्मक लेख "लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस" निकला था । उस लेख ने नई कविता पर नए ढंग से विचारने की प्रेरणा दी ।

"तीसरा सप्तक" में साही की बीस कवितायें संकलित हैं । इसके बादवाला उनका काव्य-संग्रह "मछलीघर" भी नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का दस्तावेज़ है । आज के यथार्थ का अभ्यन्तरीकरण जहाँ तक नई कविता की प्रवृत्तियों के मूल में है उतना अन्यत्र नहीं । इस दृष्टि से साही की कवितायें जटिल

मानसिक स्थिति एवं आस्था की प्रस्तुति ठहरती है । कवि-मन की त्रस्तता का बोध यहाँ अनायास प्राप्त हो जाता है । मनुष्य की लघुता तथा उसकी निस्सहायता की गहरी पहचान इन कविताओं में अभिव्यक्त हुई है । ये प्रवृत्तियाँ साही की प्रारंभिक कविताओं (तीसरा सप्तक) से होकर "मछलीघर" की कविताओं में विकास प्राप्त कर लेती हैं । साही मानव-जीवन के यथार्थ का अन्वेषी कवि रहा है इसलिए उनकी रचनाओं में वर्तमान के यथार्थ की भीषणता का अनावरण हुआ है । नया कवि इस यथार्थ का साक्षी होता है । साही निस्सन्देह मानवप्रेमी कवि थे इसलिए कवि गिरिजाकुमार माथुर ने कहा, "इतिहास की प्रक्रिया के संदर्भ में आदमी की विडम्बना की गहरी पकड विजयदेव नारायण साही की रचनाओं में मिलती है जो उन्हें नई कविता के समर्थ कवियों की पंक्ति में बिठाती है ।"[1]

साही समता के पक्ष में थे । सामाजिक विषमताओं को दूर करने के लिए निरन्तर संघर्षरत व्यक्ति थे साही । वे मनुष्य को परस्पर मिलाना चाहते थे । सभी प्रतीयमान विविधताओं के परे एक ऐसे स्वस्थ समाज की कल्पना करते थे जहाँ एक दूसरे की बात संगीत के जैसे सुन ले । उन्होंने कहा कि "विविधता के बीच से सब को जोड़नेवाले नये संस्कारों की खोज और निर्माण, दरिद्रता और

---

1. नई कविता सीमायें और संभावनायें - गिरिजाकुमार माथुर - पृ. 20

कंगाली से संपन्नता की ओर जाना और साथ गैरबराबरी को मिटाकर अधिक से अधिक समता को स्थापित करना । इन बदलावों के लिए सतत संघर्ष ही वास्तविकता है । वह समाज को घने रिश्तों के साथ जोड़ती है ।"[1] इस दृष्टि से "तीसरा सप्तक" का काव्य उनकी काव्य-संवेदना के विकास का द्योतक निकलता है तो "मछलीघर" की रचनायें आन्तरिक एकालाप का । इन कविताओं का आधार जीवन का कठोर यथार्थ है । वे आज की स्थिति से उत्पन्न असंतोष और विक्षोभ का चित्रण करती है । वे जटिल वास्तविकताओं को वाणी देनेवाली हैं जिनकी कतिपय प्रवृत्तियों पर विचार करना वाँछनीय है ।

विसंगति बोध

जीवन की अयुक्तिक परिस्थितियों से सामना करनेवाला व्यक्ति यह अनुभव करता है कि जीवन असंगत या विसंगत है । सब से पहले इस मानसिकता की अभिव्यक्ति विश्व युद्धोत्तर पाश्चात्य साहित्य में हुई थी । युद्ध की विभीषिकाओं एवं प्रताडनाओं ने जीवन को जितना त्रस्त किया था इसका सही परिचय युद्धोत्तर पाश्चात्य साहित्य में उपलब्ध होता है । भारत में सब से पहले प्रयोगवादी कविता में तथा बाद में स्वाधीनता-परवर्ती साहित्य

---

1. साहित्य क्यों - विजयदेव नारायण साही - पृ. 111

में इसकी अभिव्यक्ति ज़ोर पकडती गई । विसंगति का अर्थ बहुत व्यापक है वह जन-मन की क्षत-विक्षत स्थिति के यथार्थ अनुभव से जुड़ी रहती है । लेकिन यहाँ सामाजिक संदर्भ में विसंगति का अर्थ सामाजिक अत्याचार एवं विषमतायें ही हैं । क्योंकि सामाजिक स्थितियों से ऊबा हुआ व्यक्ति अनुभव करता है कि उसका जीवन निरर्थक है तथा विसंगत भी । इसलिए वह निराशाग्रस्त हो उठता है । "तारसप्तक" से लेकर "तीसरा सप्तक" की कविताओं में इस विसंगतिबोध तथा उस से उत्पन्न निराशा का स्वर मुखरित है । साही की कवितायें इसके लिए प्रत्यक्ष साक्षी है । "तीसरा सप्तक" में संकलित "दर्द की देवापगा" शीर्षक कविता की पंक्तियों में इस विसंगति का बोध गहरा है,

"अगर केवल प्यार ही होता
तो उसे कह डालता
अगर केवल दर्द ही होता
तो उसे सह डालता"[1]

अर्थात् प्यार और दर्द के अलावा कविमन और कई प्रकार की व्यथाओं से बोझिल है । साही के "मछलीघर" की मछली इस त्रस्त जीवन का प्रतीक है जो ठंडी काँचहीन दीवार के सहारे तृषाहीन जीवन जिए जा रही है । विसंगति से उपजनेवाली छटपटाहट साही की बहुत सारी

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 180-181

कविताओं में अभिव्यक्त हुई हैं । "हिमालय के आँसू" शीर्षक कविता में यह संत्रास और तीव्रता के साथ अभिव्यक्त होता है,

"सच मानो प्रिय
इन आघातों से टूट टूटकर रोने में कुछ शर्म नहीं
कितने कमरों में बन्द हिमालय रोते हैं
मेज़ों से लगाकर सो जाते हैं कितने पठार
कितने सूरज गल रहे अन्धेरे में छिपकर
हर आँसू कायरता की खीझ नहीं होता ।"[1]

यहाँ हिमालय का रोना तथा सूरज का गलना जैसी बिंबवादी क्रियाओं के माध्यम से उस अवसाद को और अधिक गहराया गया है । ज़ाहिर है कि इन कविताओं का आधार जीवन का ठोस यथार्थ है ।

विसंगत जीवन में उदास का अनुभव होता है । हृदय में कुछ न कुछ होने की थकान का अनुभव होता है । अब यह दर्द जीवन का अंग बन गया है । इसलिए इसको लेकर रोना नहीं इससे लडना ही कवि का लक्ष्य हैं,

"ज़िन्दगी इस तरह कुछ खामोशियों से भर गई
खोजता फिरता हूँ दिल का दर्द पर पाता नहीं

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 182

दर्द से जैसे झुकी जाती है पलकें बार बार
और रोने में भी पहले सा मज़ा आता नहीं ।"[1]

अपने चारों ओर की खामोशी का अनुभव करते हुए कवि अनुभव करता है कि जीवन की इस जटिलता को सुलझाने के प्रयत्न में वह उस में और अधिक उलझन ही पाता है,

"यह अजब खामोश धड़कन है किसी आवाज़ की
शून्य में भी जो नई आवाज़ रचती ही गई
जिस कदर लिखता गया उठते गये अनगिनत सवाल
लाख सुलझाता गया गुत्थी उलझती ही गई ।"[2]

ज़िन्दगी की विसंगत स्थिति का और एक परिणाम सूनेपन का एहसास है । सब कहीं शून्यता ही प्राप्त करनेवाले व्यक्ति की ज़िन्दगी निरर्थकता या सारहीनता के किनारे को छू लेती है । इस विसंगत परिवेश में उसको सूनेपन के अलावा और कुछ नहीं मिलता । अर्थात् जीवन खामोशियों से भर जाता है । साही की "चान्द की चाह", "इस घर का एक सूना आँगन" आदि कवितायें इस संदर्भ में विशेष विचारणीय है,

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 187
2. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 187

"सूना आँगन खालो कमरे
यह बेगानी सी छत पसीजती दीवारें
यह धूल उडाती हुई चैत की गरम हवा ।"[1]

व्यक्ति-जीवन और उस से जुडी प्रकृति भी सूनेपन में निमग्न हो जाती है । साही की कविताओं में दिखाई पड़नेवाला यह शून्यताबोध मात्र कवि या किसी एक व्यक्ति का नहीं बल्कि सामयिक सच्चाई है । इस से उबरने की आकांक्षा रखनेवाली तथा भविष्य की ओर आस्थाभरी दृष्टि डालनेवाली है साही की कविता, "साही की कविता विकल्प की प्रतीक्षा की कविता है और विकल्प की प्रतीक्षा साही की कविता है ।"[2] इसलिए यद्यपि विसंगति समूचे जीवन में व्याप्त एक सच्चाई है तथापि कवि के अन्तर्मन की पहचान से यह स्पष्ट हो उठता है कि कवि विकल्प की तलाश में है । वह विकल्प है विद्रोह ।

व्यवस्था का आतंक

व्यवस्था का मतलब वर्तमान शासन तंत्र से है । उसका क्षेत्र विशाल है । नई कविता ने इस विशाल क्षेत्र के तन्त्र को भी अपना विषय बनाया है । इसलिए नई कविता अपने समय के रुख को अपनानेवाली कविता ठहरती है । उसने वर्तमान विरोधी स्थितियों

!. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 194
2. दिशान्तर - सं. परमानन्द श्रीवास्तव और विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - पृ. 10

के साथ संघर्ष किया । वर्तमान कुरीतियों और भ्रष्टाचारों के विरुद्ध उसने आवाज़ उठायी । व्यवस्था की असन्तुलित एवं अव्यवस्थित स्थिति के विरुद्ध उसने अपनी दृष्टि दौडाई । जनमानस में अन्तर्निहित आतंक पूरी नई कविता में छा जाती है । व्यवस्था की वर्तमान स्थिति से व्यक्ति ऊब जाता है । विजयदेव नारायण साही की अधिकांश कविताओं में व्यवस्था का आतंक और उसके प्रति विद्रोह झलकता है । यह अनैतिकता के प्रति कवि का आक्रोश है । क्योंकि, "वस्तुत: मानवीय गरिमा के प्रति संवेदनजन्य अन्तरात्मा की पुन: प्रतिष्ठा का एक वेदनापूर्ण दायित्व है जिसका निर्वाह हमें प्रतिक्षण करना पड़ता है ।"[1] नई कविता खासकर साही की कविता इस दायित्व के निर्वाह में है । उनका "सामने आसपास पीछे" शीर्षक कविता यह साबित भी करती है,

"मरे हुए पक्षी की तरह
वह हमेशा तुम्हारे पैरों के पास
पडा रहता है
और तुम्हारे बोलते ही
फिर बोलने लगता है
तुम कभी भी
उस से छुटकारा नहीं पा सकते"[2]

---

1. मानव मूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती - पृ. 35
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 2

आतंक की इस अवस्था का कोई समाधान ढूँढ न पाने पर भी कवि अपनी निस्सहायता के बारे में सजग है । ऐसी अवस्था में कवि कुंठा का अनुभव करता है और संप्रेषणहीन स्थिति का अनुभव करने के लिए विवश हो उठता है । वह अनुभव करता है कि व्यक्ति के लिए सब से बड़ी विसंगति आतंक का यह अनुभव ही है ।

विसंगति बोध से उद्भूत एक और क्रूर नियति है मनुष्य का अपने आप से अजनबी होना । यह अजनबीपन नई कविता में आद्यन्त व्यक्ति का शिकार करता रहता है । क्योंकि वह आधुनिक जीवन-परिवेश का एक अनिवार्य पहलू है । अपने परिवेश से कटा हुआ व्यक्ति अजनबीपन का भोक्ता अवश्य बनता है । वह दिशाहीन होकर इधर-उधर भटकता रहता है । इस दयनीय स्थिति का चित्रण साही अपनी कविताओं में भिन्न भिन्न प्रतीकों के माध्यम से किया है,

"पिंजरे से छूटी हुई लक्ष्यहीन चिड़िया सी
डरी डरी पगलाई, पुलकायित
कमरों में, छतों पर झुकी खपरैलों पर
उड़ती फिरती है"[1]

यह अयाचित स्थिति आधुनिक जीवन की त्रासदी है और नई कविता का कथ्य भी । इस प्रकार अपने परिवेश से उखड़ जाने तथा घर में

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 192

बेघर होने की स्थिति में यह अकेलापन व्यक्ति के लिए आतंक बन जाता है । साही की कविता ने इसका भी आभ्यन्तरीकरण किया है । उनकी "अन्धेरे गोलार्द्ध की रात" शीर्षक कविता इसके लिए पर्याप्त प्रमाण है,

"आज की रात
मैं फिर अकेला छूट गया हूँ[1]
इस अन्धेरे गोलार्ध में ।"

इस उद्‌बोधन परिवेश में कवि ने जिस आतंक का अनुभव किया है वह नई कविता के नये मानव का कठोर यथार्थ ठहरता है ।

नई कविता के व्यवस्थाविरोधी स्वर को भी साही ने अछूता नहीं छोडा है जो कि कभी कभी विद्रोह की सीमा तक पहुँचता है । साही अपने दोस्त सर्वेश्वर के लिए समर्पित कविता "एक कार दुर्घटना की याद" व्यवस्था-विरोध को प्रकट करनेवाली है,

"क्या तुम भी वही सोच रहे हो जो मैं सोचता हूँ
क्या अब हम इस नियति को
कभी नहीं तोड़ सकेंगे ?
क्या हमारी ज़िन्दगी

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 7

इसी एक दुर्घटना को देखते रहने की कोशिश में
खत्म हो जायेगी ।[1]

संक्षेप में साही की कविता में विसंगतिबोध के सभी संदर्भों की अभिव्यक्ति हुई है जिसमें समसामयिक जीवन की धड़कनें अनुगुँजित हैं ।

अस्वतंत्रता-बोध

स्वतंत्रता व्यक्ति के संदर्भ में सब से बडा मूल्य ही है । वह अपने परिवार में, समाज में, परिवेश में, सब कहीं अपने को स्वतंत्र पाना चाहता है । यहाँ स्वतंत्रता का मतलब अपनी इच्छा एवं दृष्टिकोण के अनुसार जीवन को रूपायित करना और आगे बढाना है । जहाँ इस के लिए बाधा उपस्थित होता है वहाँ व्यक्ति अपने को तथा अपनी ज़िन्दगी को अस्वतंत्र पाता है । याने कि स्वतंत्रता एक दृष्टिकोण है । प्रगतिवादी कवियों के स्वतंत्रताबोध एवं नये कवियों के स्वतंत्रताबोध में इसलिए अन्तर है । प्रगतिवादी कवि अपने परिवेश तथा कामगर वर्गों के प्रति एक खास सिद्धान्त के तहत प्रतिबद्ध है । वे मनुष्य को बाँटकर देखते हैं हमेशा समाज के दलितों-पीडितों का पक्ष लेते हैं और दूसरों को शत्रु समान स्वीकारते हैं । इसलिए उनका स्वतंत्रताबोध एक हद तक अपूर्ण है । लेकिन नये कवि

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 29

संपूर्ण मानव राशी की भलाई के लिए प्रतिबद्ध है । वहाँ कोई एकांगी दृष्टिकोण नहीं । इसलिए उनका दृष्टिकोण याने स्वतंत्रता-संबंधी अवबोध काफी विशाल एवं स्वस्थ है । किसी को सन्तुष्ट करने के लिए या किसी खास व्यवस्था को प्रतिष्ठित करने के लिए गढित स्वतंत्रताबोध नहीं । अस्वतंत्रता व्यक्ति के लिए अभिशाप है । इसलिए वैयक्तिक, सामाजिक एवं पारिवारिक संदर्भों में आधुनिक मानव अपने को पूर्णत: स्वतंत्र पाना चाहता है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न भिन्न प्रकार से अस्वतंत्रता के संत्रास से ग्रस्त व्यक्तियों एवं स्थितियों का चित्रण नये कवियों ने किया है । स्वतंत्रता-संबंधी साही की निजी धारणा भी है । अपना समाज-चिन्तन प्रस्तुत करते वक्त साही ने व्यक्ति-स्वातंत्र्य संबंधी अपना मत प्रकट किया है । यह स्वातंत्र्येच्छा साही की कविता का प्रमुख स्वर इसलिए बन जाती है कि उनका परिवेश कई प्रकार की अनैतिकताओं से भरा हुआ था ।

"धूप भरे आकाश में चक्कर काटते हैं
कहीं और उड़ जाने के पूर्व"[1]

धूप भरे आकाश में चक्कर काटनेवाले पक्षी के समान आधुनिक मानव अभिशप्त स्थिति का सामना कर रहा है । कवि स्वतंत्रता का इच्छुक है । वह हर कहीं मनुष्य को स्वतंत्र एवं सुरक्षित पाना चाहता है । इसलिए स्वातंत्र्येच्छा नई कविता का मूल स्वर बन गयी है । साही इस अवस्था के भिन्न भिन्न संदर्भों को प्रस्तुत करते हैं, "खोये हुए यात्रियों की यात्रा" शीर्षक कविता के शीर्षक से ही पता चलता है

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ.11

कि उसकी यात्रा अपनी प्रतिकूलताओं से निकलकर कहीं सुरक्षित होने के लिए है,

"जाने कितने देर बाद जब वापस लौटा
तब तक बादलों की शक्ल बदल चुकी थी
वह जो सहजन की फुनगी पर ऊँट का बच्चा था
खरगोश बन चुका था
वह जो कंगूरे के पास का टापू था
रेगिस्तान बन चुका था"[1]

जाहिर है, जीवन काफी कठिन एवं बंजर बनता जा रहा है । ऐसे संदर्भ में कवि का स्वतंत्रताबोध कहीं मानवप्रेम की हरियाली ढूँढ रहा है ।

मुक्ति की कामना

अस्वतंत्रता से जुडी हुई और एक समस्या है मुक्ति की कामना । क्योंकि अस्वतंत्र परिवेश से मुक्त होने की इच्छा स्वाभाविक है । इसलिए मुक्ति की कामना स्वातंत्र्येच्छा से संबंधित है । मुक्ति या स्वतंत्र होना मनुष्य के मनुष्य होने का उपक्रम है । विसंगत-परिवेश में व्यक्ति पीडा एवं तडप का अनुभव

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 12

करता है । वह अपने उस परिवेश से मुक्त होने के लिए प्रयत्न भी करता है । परिवेश की चुनौतियों से टकराने के कारण उसका जीवन संघर्षपूर्ण बन जाता है । इस यथार्थ को नई कविता ने अपने विशाल कलेवर में समेट किया है ।

मुक्ति की कामना साही की कविताओं का मूल स्वर है । परिवेश से समझौता न कर पाने के कारण उनकी कविताओं में तनाव का वातावरण बना हुआ है, "विजयदेव नारायण साही की कवितायें विशेष रूप से अनास्था और संशय से ग्रस्त हैं । कहीं कहीं उनमें विश्वास है, अनास्था और मुक्ति-प्रयासों की हल्की रेखायें भी झलक जाती हैं ।"[1] क्योंकि वर्तमान परिस्थिति से असन्तुष्ट मन का परिचय साही की कविताओं में सर्वत्र मिलता है । इसलिए जगदीश गुप्त ने कहा, "नई कविता किसी प्रतिक्रिया से नहीं उपजी है वह आधुनिक मानव की सहज परिणति है ।"[2] साही की "मानव राग" "हिमालय के आँसू" जैसी कई कवितायें इस कथन का समर्थन करनेवाली हैं -

"मैं सुधर मंजिलों का शिल्पी
केवल पथ का वासी
×× ×× ×× ××

---

1. नई कविता में वैयक्तिक चेतना - अवधनारायण त्रिपाठी - पृ. 68
2. कवितांतर - जगदीश गुप्त - पृ. 32

है मुक्ति माँगती शिथिल
भुजायें मेरी, अविनाशी ।[1]

मुक्ति की तीव्र इच्छा आधुनिक कविता की निजता है । एक विडम्बनापूर्ण परिवेश से मुक्ति की खोज करने का एहसास हमें मिलता है । साही इस अभिशप्त स्थिति से मुक्त होने के लिए एकत्रित होने की माँग करते हैं । क्योंकि अकेले रोने या सिसकने से कोई फायदा नहीं एक साथ मिलकर रोने से शायद आँसु टकराकर अंगारे बन जायेंगे । धरती पर पड़े दरारों को मिटाने की शक्ति उस में हो । उनकी "हिमालय के आँसु" कविता का यही सन्देश है । अर्थात् देश की अभिशप्तता से मुक्त होने के लिए, उस विसंगत-स्थिति से छुटकारा पाने के लिए, एक व्यक्ति की ताकत काफी नहीं उसके लिए कइयों की ताकत की आवश्यकता है । एक प्रकार की सामूहिक चेतना का आह्वान इसमें हैं -

"मैं केवल इतना कहता हूँ
इस सूने कमरे की सिसकन से क्या होगा ?
बाहर आओ,
सब साथ साथ मिलकर रोओ
आँसु टकराकर अंगारे बन जाते हैं ।[2]

यह मुक्ति की कामना से उपजनेवाली मानसिकता है । साही के "मछलीघर" संग्रह की कविताओं के मूल में यह मानसिकता देखने को

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 178-179
2. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 182-183

मिलती है । क्योंकि अस्वतंत्रता से मुक्त होकर एक खुली हवा में घूम लेना मुक्तिकामी व्यक्ति की बलवती इच्छा है जिसको नई कविता ने संप्रेषित किया है ।

विद्रोह की अनिवार्यता

आधुनिक कविता हिन्दी काव्य-यात्रा का नया दौर है । इस दौर में प्रगतिशील भावना का गुणात्मक विकास हुआ है । विद्रोह आज कविता का विषय है । इन रचनाओं में विद्रोह का प्रचलित रूप नहीं {जैसे कि प्रगतिवादी युग में प्राप्त हुआ था} बल्कि अनिवार्यता का प्रस्तावित स्वरूप प्राप्त होने लगा । इसीलिए जगदीश चतुर्वेदी ने कहा, "नई कविता का मुहावरा यहाँ आकर एकदम बदल जाता है । यह विद्रोह की कविता कह सकते हैं - सक्रिय काव्य विद्रोह ।"[1] यही विद्रोह साही की कविता का निचोड है । आधुनिक कविता खासकर नई कविता नई पीढी की नई मानसिकता की कविता है । वर्तमान प्रतिकूलताओं से संघर्ष करते हुए आगे का रास्ता बनानेवाली कविता है । इसलिए चुनौतियों को स्वीकारना नई पीढी का स्वभाव है । तनाव भरे माहौल में कभी कभी विद्रोह का स्वर उमड पडता है । विद्रोह की इस अनिवार्यता को नई कविता ने अपने कलेवर में स्थान दिया है ताकि साही की कविता भी इसकी आँच से दूर नहीं रहती । "दीवारें" शीर्षक उनकी कविता में इसके पर्याप्त प्रमाण है,

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता - सं. जगदीश चतुर्वेदी - आलेख - पृ. 12

"तब से हम ने तोडी है कितनी दीवारें
कितनी बार लगाये हम ने जय के नारे
पुष्ट साहसी हाथों को अन्तिम चोटों से
जब जब अरस कर टूटी ज़िद्दी प्राचीरें
नभ में उठकर धुल गयी है"[1]

साही की कविता प्रत्यक्षत: वाद या विचार की कविता नहीं । लेकिन विद्रोह की अनिवार्यता का समर्थन करनेवाली तथा अपने में इसकी छटपटाहट एवं तनाव का वहन करनेवाली अवश्य है । संघर्षशील परिवेश में व्यक्ति को जिन जिन बाधाओं से टकराना पडता है उन सब का चित्रण उन्होंने किया है । इसलिए संघर्ष या विद्रोह साही की कविता का सहज स्वर है,

"विराट कमल के आकार की
बनती बिगडती लपटें उठ रही है
और दसों दिसाओं में
खडे हुए दिक्पालों पर
प्रकाश धधक रहा है ।"[2]

साही की उपरोक्त पंक्तियाँ जीवन के बहुआयामी पहलुओं को छूनेवाली है, तथा अपनी क्रान्ति-भावना को रेखांकित करनेवाली भी है । क्योंकि, "नई कविता का जन्म संघर्षों और तनावों से उत्पन्न

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 40
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 9।

विभिन्न भाव-स्थितियों से हुआ है ।"[1] क्रान्ति का यह स्वर और भी तीव्र होकर निम्न लिखित पंक्तियों में मुखरित है -

"यही परंपरा है यही क्रान्ति यह जिजीविषा है
यही आयु है यही नैरन्तर्य है"[2]

साही का संकेत है कि वर्तमान परिस्थितियों में आगे जीना चाहते हैं तो क्रान्ति करना ही एकमात्र उपाय है । यह क्रान्ति याने विद्रोह ही ज़िन्दा रहने का या अस्मिता का सूचक है । नई कविता की शक्ति सचमुच सत्य एवं सौंदर्य की प्रतीक्षा है । आज सत्य का स्थान असत्य ने ले लिया यही जीवन की अर्थहीनता है । इस अर्थहीनता को साही ने "लाक्षागृह" नामक कविता में स्पष्ट किया और कहा कि छल, बल और माया से यहाँ असत्य की जीत होती है, सत्य के नाम पर ।

"जब जब असत्य ने छल से बल से माया से
सब कुछ करने को भस्म लाख के भवन रचे"[3]

यहाँ सब कुछ को लाख का भवन भस्म करने की इच्छा में अपनी विद्रोही भावना निहित है । संक्षेप में कहा जाय तो क्रान्ति की इस भावना को नई कविता के कवियों ने उद्वेलित करने का अथक प्रयास किया है । यहाँ साही का योगदान भी उल्लेखनीय है ।

---

1. नई कविता का आत्मसंघर्ष - ग. मा. मुक्तिबोध - पृ. 114
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 95
3. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 93

आधुनिकताबोध

आधुनिकताबोध याने आधुनिक भावबोध आधुनिक मनुष्य की बदली हुई मानसिकता का परिणाम है । इस की तह में प्रश्नचिह्नों की निरन्तरता है । जड़ परंपरा का निषेध करते हुए उसमें से जीवन्त-तत्वों को ग्रहण करके जीवन को आगे ले जानेवाली दृष्टि ही आधुनिकता है । युगीन संदर्भ में अपनी परंपरा एवं विरासत का पुन:मूल्यांकन होता है । विज्ञान ने मनुष्य को इस प्रकार करने के लिए विवश किया था, "विज्ञान का विकास इस काल की प्रमुख घटना है । विज्ञान के आविष्कार और विकास ने ही आधुनिक युग के समस्त मूल्यों का निर्माण और विकास किया ।"[1] अत: आधुनिक भावबोध की तह में वैज्ञानिक दृष्टिकोण सक्रिय है । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आधुनिकता या आधुनिक भावबोध ने वर्तमान जीवन की जटिलताओं को उसकी पूरी गहराई के साथ पकड़ पाने तथा संप्रेषित करने का कार्य किया है । जीवन के प्रति एक नई दृष्टि अपनाने में आधुनिक भावबोध की प्रमुख भूमिका रही है । इसलिए एक विशेष प्रकार का साहित्य रचा गया जो पहले कहीं भी वर्तमान नहीं था - "एक विशिष्ट अर्थ में यह कहे कि मनुष्य ही साहित्य का परिवेश है तो एक विशिष्ट साहित्य को ही ध्यान में रख रहे होंगे जिसे सामान्यत: आधुनिक साहित्य कहा जाता है ।"[2] जीवन की अधुनातन जटिल समस्याओं को अभिव्यक्ति के समय आधुनिकता बोध की चर्चा सार्थक हो उठती है । पूर्ववर्ती साहित्यिक मान्यताओं की अपेक्षा

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता सर्जनात्मक संदर्भ - रामदरस मिश्र - पृ. 19
2. साहित्य का परिवेश - सच्चिदानन्द वात्स्यायन - साही का लेख - पृ. 72

काफी भिन्न दृष्टिकोण रखनेवाला साहित्य है अधुनातन साहित्य, उसमें क्रान्ति का स्वर काफी मुखरित है, "जहाँ उन्नीसवीं शताब्दी थी, वहाँ बीसवीं शताब्दी क्रान्ति के मोह में धीरे धीरे उबरने की शताब्दी है और साहित्य में भी यही प्रक्रिया देखी जा सकती है और वही यथार्थपरक भी होगी ।"[1] अत: यथार्थ जीवन की सहजाभिव्यक्ति आधुनिक भावबोध की पहली शर्त बन जाती है,

"रात होते ही
खिड़की के पार से
वह हँसीन चेहरा झाँकेगा
जिसके बारे में तुम सुन चुके हो ।"[2]

इसलिए नई कविता में लघुमानव के लघु लेकिन विशिष्ट जीवन का पर्दाफाश हुआ है ।

"हो गई रिक्त आँखों की विषमय व्याकुलता
चुक गया गरम माथे में चुभता हुआ प्यार
हो गई सर्द
×× ×× ××
पर इस में परिचित क्या है जान नहीं पाता ।"[3]

---

1. तीसरा सप्तक - अशोक वाजपेइ - पृ. 143
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 117
3. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही-पृ. 22

मृत्युबोध को सहज स्वीकृति दर असल आधुनिक भावबोध का परिणाम है । साही ने अपनी एक कविता में मृत्यु को सहज रूप से स्वीकार किया है,

"क्योंकि इतना मैं ने ज़रूर देखा है
कि सुबह सब कुछ ज्यों का त्यों होने के बाद
यह सारा वातावरण
बेहद खूबसूरत हो जाता है
जैसे दुर्घटना को पचा लेने के बाद
जंगल खूबसूरत हो जाता है"[1]

आधुनिक मानव इस यथार्थ को ढोता रहता है और वह अपने जीवन की सार्थकता पर प्रश्न-चिह्न लगाता है । व्यक्ति अपने को निस्सहाय पाता है और साथ ही साथ सचेत भी । मृत्युबोध की चरम स्थिति का चित्रण साही ने यों किया है,

"ऐसे ही मैं ने सृजन को देखा है
और उसे मृत्यु की तरह पहचाना है
वह हत्या से उपजता है
और आत्महत्या की ओर बढ़ता है ।"[2]

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 119
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 22

संप्रेषणहीनता

आधुनिक जीवन ने मनुष्य को एक ऐसी परिस्थिति में पहुँचा दिया है जहाँ संप्रेषण असंभव बन गया है । व्यक्ति व्यक्ति के बीच एक खामोशी छा गई है । एक दूसरे से हिलने-मिलने की अपेक्षा अपने आप में सीमित रहने की इच्छा व्यक्ति में पनप रही है । यह स्थिति वास्तव में संप्रेषणहीनता है । संप्रेषणहीनता की प्रस्तुत स्थिति के तीन-चार तरीके होते हैं । पहला, कवि अपने आप से होनेवाले संप्रेषण में व्यवधान का अनुभव करता है । वहाँ कवि अपने भावों को व्यक्त करने में असमर्थ होकर स्वयं चुप्पी साध लेता है । यहाँ सृजन ही स्वयं असंभव सा लग रहा है । इस को कवियों ने अपने ढंग से अभिव्यक्त किया है । साही की कविताओं में इस खास स्थिति का चित्रण हुआ है । यहाँ संप्रेषण की समाप्ति व्यक्ति के अकेलेपन से या कवि के सामाजिक परिवेश से जुड़े रहने के कारण से उत्पन्न है । साही का संकलन "मछलीघर" में संकलित कुछेक कविताओं में इसकी अभिव्यक्ति हुई है जैसे,

"यह अजब खामोश धड़कन है किसी तूफान की
शून्य में भी जो नई आवाज़ रचती ही गई ।"[1]

यह उनकी कविता "खामोश धड़कनें" की पंक्तियाँ हैं । साही का संग्रह "साखी" में इस मानसिकता को कवि ने यों प्रेषित किया है,

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 36

"तुम्हें विश्वास नहीं होता
लेकिन उसके पास कहने को कुछ नहीं है
सिर्फ उसकी आवाज़ में
एक मिठास है
जैसे वह बहुत दूर से लौटा हो"[1]

यहाँ कवि के पास कहने को बहुत कुछ है पर कह नहीं पाता है । "संवाद तुम से" शीर्षक साही की समकालीन कविताओं के संग्रह को एक कविता में इसका और एक आयाम खुल जाता है,

"ज़िन्दगी कुछ इस तरह खामोशियों से भर गई
खोजता फिरता हूँ दिल का दर्द पर पाता नहीं,
दर्द से जैसे झुकी जाती हैं पलकें बार बार
और रोने में भी पहले-सा मज़ा आता नहीं"[2]

साही की कविताओं में अभिव्यक्त यह स्थिति मात्र कवि की नहीं; बल्कि उस समय की है । यह मनुष्य और उसके जीवन की खाई से उत्पन्न है । इन दोनों के बीच दरारें उत्पन्न हो गई है । जो भी हो संप्रेषण की समाप्ति मानव के अकेलेपन से जुडी हुई अभिशप्त अवस्था ही है ।

मानवताबोध

मनुष्य के समग्र विकास को लक्ष्य करनेवाली

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ.41
2. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ.85

मानसिकता है मानवताबोध । वर्तमान मानवीय स्थिति का समग्र ज्ञान प्राप्त करना तथा वर्तमान स्थिति से उसे ऊपर ले जाने का संकल्प ही मानवताबोध है । साहित्यिक प्रवृत्तियों में भी यही बोध दिखाई देता है क्योंकि कवि मूलत: मानव प्रेमी होता है । साहित्य उसकी सचेतनता की अभिव्यक्ति है । हर युग में कविता को प्रासंगिक बनानेवाला पहलू उसकी अपनी मानवीय चेतना ही है । तब प्रश्न उठता है कि मानवीय चेतना का सिलसिला क्या पूरे काव्येतिहास में मौजूद है ? तो नई कविता में स्पन्दित मानवीय चेतना का विशेष अर्थ क्या है ?

नई कविता में मानवीयता का गहरा बोध अवश्य है । वह न उदात्तीकृत है न उद्‌बोधनात्मक और न प्रचारात्मक । वह आज के जीवन की विद्रूपताओं को स्पष्ट करते हुए अपनी सचेतनता का परिचय देती है ।

साही की कविता में भी इस मानवीय चेतना का विस्तार अवश्य हुआ है । जैसे बता चुका है कि साही की कविता का मूल आधार आस्था है । जीवन की आस्था ही कवि के मानववादी होने का शर्त है । लेकिन उस मानववाद का स्वरूप क्या है यह

विचारणीय प्रश्न है । प्रथमत: साही का दृष्टिकोण समाजपरक है । वे मनुष्य को प्रगति एवं ऊँचाई चाहते हैं । नई कविता में यह समाजपरक तथा मानवीयता का बोध काफी सक्रिय है, "मेरी यह स्पष्ट मान्यता है कि नई कविता के रूप में प्रयोगवाद की परिधि से बाहर आने पर आधुनिक हिन्दी कविता में मानववादी तत्व कहीं अधिक घनिष्ठ काव्यानुभूति के साथ व्यक्त हुए है ।"[1] साही का दृष्टिकोण यही है कि मनुष्य उत्तरोत्तर उच्चतर मानवीय स्थिति पर पहुँच जाए ।

नई कविता मामूली आदमी के सुख दुख के निकट है और साही की कविता में यह विशेष रूप से स्पष्ट है । इसलिए साही ने लघुमानव और उसकी प्रासंगिकता पर ज़ोर दिया है । इसलिए उनकी कविता में लघुमानव के दुख एवं पराभव का चित्रण बुलन्द है, "वह मानवीय लघुता को मूल्य मानकर चलते हैं । इस दृष्टि को अपनाने के कारण उनकी कविता में पराभव और ग्लानि के चित्र ही अधिक मिलते हैं ।"[2] नई कविता के प्रस्तुत पहलू का विचार-विस्तार साही के जैसे अनेक कवियों ने किया है । साही की "मानव राग" कविता में मानवीयता की अनुगूँज यों हुई है,

"ये हरे मटर के खेत, प्रवंचक जब कि हरियाली
यह भरी सुधा से ईख झूमती सरसों मतवाली

---

1. कवितान्तर - जगदीश गुप्त - पृ. 40
2. नई कविता सिद्धान्त और सृजन - नरेन्द्रदेव वर्मा - पृ. 80

यह बहुत शक्तिमय, बहुत सुधर मेरे श्रम का सपना
पर इन पर मिथ्या अधिकारों की रेखायें काली ।"[1]

इस में श्रम के सपने का सुधर होना, मिथ्या अधिकारों की रेखाओं का काली होना - सब में एक तरह की बेसहारा मानवीयता की अनुगूँज है । अपनी अस्मिता संबंधी विचार से उद्‌भूत यह बेसहारापन नई कविता के केन्द्र में वर्तमान है । व्यक्ति की यह निस्सहायता साही की "दर्द की देवापगा", "दोपहर नदी स्नान" जैसी कविताओं में स्पष्ट है -

"यह अतल आघात से भी तीव्र
यह अतीन्द्रिय आन्धियों से भी अधिक उद्‌दाम
प्राणदायिनी ज्वाला -"[2]

जैसी पंक्तियों के द्वारा साही सह कहना चाहता है कि व्यक्ति को यह व्यथा बिना कोई रुकावट से लगातार महसूसती है । इस प्रकार साही ने मानवताबोध का स्पष्ट चित्र अपनी कविताओं में व्यक्त किया है ।

संक्षेप में साही नए कवियों में एक ऐसा कवि है जिनकी दृष्टि हमेशा समाज के पीडित, उपेक्षित एवं शोषित

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 179
2. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 181

जन सामान्य के साथ है । स्वाधीनोत्तर हिन्दी कविता को युग जीवन की धड़कनों से जीवन्त बनानेवाला कवि है साही । उनकी क्रान्तदर्शी दृष्टि वैयक्तिक एवं सामाजिक विसंगतियों पर समान रूप से पड़ी है और उसको बदलने के संग्राम में सक्रिय सहयोग भी उन्होंने दिया है । निस्सन्देह साही मानव प्रेमी कवि है जिन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी को इस के लिए क़ुर्बान भी कर दिया था ।

पाँचवाँ अध्याय
==========

समकालीन कविता-प्रसंग और साही की कवितायें

पाँचवाँ अध्याय

समकालीन कविता-प्रसंग और साही की कवितायें

यद्यपि सन् साठ के बाद की कविता को समकालीन कविता कही जाती है तथापि उस समय लिखी गई सभी-कवितायें समकालीन शब्द से अभिहित करने योग्य नहीं है । समकालीनता से क्या तात्पर्य है ? यह काफी विचारणीय विषय है । "समकालीन" शब्द का मतलब अपने समय से या तत्कालीनता से है । इस दृष्टि से दैनंदिन जीवन की विद्रुपताओं को अपने में समाहित करनेवाली रचना समकालीन है । याने कि समकालीन कविता दैनंदिन जीवन की कविता है । आज़ादी के बाद भारतीय समाज में मोहभंग की जो स्थिति छा गयी थी उसने समकालीन कविता को काफी आन्दोलित किया था । उसका कथ्य समसामयिक जीवन की समस्यायें हैं । इसलिए वह अपने समय की दस्तावेज बन गई । रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में, "समकालीन कविता का काव्य-संसार एक ओर आज के दैनंदिन जीवन में व्याप्त त्रासदी को उभारकर क्रमशः कठिन होते हुए जीवन को कविता का विषय बनाता है तो दूसरी ओर इस विषमता को परखने की एक कौन्ध सी प्रदान करता है ।"[1] इसके केन्द्र में आम आदमी है । इसकी मानसिकता समकालीन परिवेश में जीनेवाले आम आदमी की साधारण से साधारण समस्याओं को अनावृत करनेवाली हैं । नागार्जुन, मुक्तिबोध, साही, धूमिल, राजकमल चौधरी,

---

1. नई कवितायें एक साक्ष्य - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 89

वेणु गोपाल, मदन वात्स्यायन जैसे कवि इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं । साही की विशेषता यह है कि उनकी रचनायें युगीन समस्याओं को अनावृत करने के साथ साथ युग-सीमा का उल्लंघन करने की क्षमता रखनेवाली हैं । धूमिल की चर्चित कविता "पटकथा" और "मोचीराम" राजकमल चौधरी की "मुक्ति प्रसंग" आदि कवितायें इस कोटि में आनेवाली हैं । साही की लम्बी कविता "अलविदा" का उल्लेख इस संदर्भ में अनिवार्य है क्योंकि उसमें अपने अनुभूत यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है, "क्योंकि कवि को अनुभवों से गुज़रना चाहिए, अनुभवों की उर्वर भूमि जनता की ज़िन्दगी है ।"[1] यह कवि का यथार्थ मात्र नहीं बल्कि आम आदमी का यथार्थ भी है, इसलिए प्रतिबद्ध भी । समकालीन कवि अपने से, समाज से तथा आम मादमी से प्रतिबद्ध है । याने प्रतिबद्धता समकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्ति है जो साही में काफी प्रबल है ।

अनावरण और आक्रमण

समकालीन कविता की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति अनावरण और आक्रमण है । इस लिए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा, "समकालीन कविता के सौंदर्यशास्त्रीय केन्द्र में इस बार साधारण जनता है इसलिए मूल्यबोध का पूरा परिप्रेक्ष्य बदल गया है ।"[2] आम आदमी

---

1. दस्तावेज़ - जनवरी 1981 - सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - पृ. 18
2. नई कवितायें एक साक्ष्य - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 50

की संवेदना को समग्रता के साथ इसमें चित्रित किया गया है । अतः उसकी तलाश एक सजगतापूर्ण कार्य है । अनावरण की प्रवृत्ति नई कविता में भी है । पर आक्रमण का स्वभाव उसमें नहीं । लेकिन समकालीन कविता में ये दोनों हैं । अनावरण और आक्रमण करने के कारण वह नई कविता से बहुत आगे हैं । इसलिए शम्भुनाथ सिंह का कथन इस संदर्भ में संगत लगता है, "आज नई कविता कविताओं के जंगल में खोई हुई कविता है उसमें बेशुमार कवि है और बेशुमार कवितायें हैं ।"[1] नई कविता के अप्रासंगिक हो जाने की सूचना उक्त कथन में है । यहाँ भी साही की अपनी प्रासंगिकता है । साही का संकलन "मछलीघर" की कविता "अन्धेरे गोलार्द्ध की रात" में यों अनावरण और आक्रमण की प्रवृत्ति दृश्यमान है -

"और मैं गुफा में से
डरी हुई प्रतीक्षारत, अचूक आँखें खोले हुए
इस आदिम अन्धकार को तौलने की कोशिश कर
रहा हूँ
मैं इस ब्रह्माण्ड का विश्वास नहीं करता
इसकी रातें विशाल हैं
और नहीं जानतीं कि मैं उन्हें देख रहा हूँ
लेकिन मैं ने इसे इसी तरह चक्कर खाते देखा है
और कभी कभी सहमती उँगलियों से
हुआ भी है ।"[2]

---

1. समकालीन हिन्दी कविता का परिप्रेक्ष्य और नवगीत - शंभुनाथ सिंह- पृ. 5
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 7

यहाँ कवि खुल्लम खुल्ला अनावृत करता है कि मैं इस ब्रह्माण्ड का विश्वास नहीं करनेवाला आदमी हूँ । इस प्रकरण को आगे बढाते हुए कवि और भी कहता है -

"मैं ने वे क्षण भी देखे हैं
जब यह सारा का सारा वन-प्रदेश
अदृश्य हो जाता है
और उस अटूट सन्नाटे में
चमकती हुई मधुमखियों की तरह
तुम्हारे भीतर से हज़ारों पत्तियाँ निकलती है ।"[1]

यों दूसरों के भीतर से निकलनेवाली हज़ारों पत्तियों की ओर कवि की अनावरण एवं आक्रमण की मानसिकता पहुँचती है । अनावरण और आक्रमण की तीव्रता को दिखानेवाली साही की निम्नस्त पंक्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं -

"विराट कमल के आकार की
बनती बिगडती लपटें उठ रही हैं
और दसों दिशाओं में
खडे हुए दिक्पालों पर
प्रकाश धधक रहा है ।

देखो, इस अग्निकुण्ड में
बल खाती हुई, मणियाँ उगलती, बदहास शताब्दियाँ ।"[2]

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 59
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 9।

उनकी कविताओं का आधार समकालीन परिदृश्य है । यह परिदृश्य व्यक्तियों से होकर परिस्थितियों तक व्याप्त है । कवि मन पर इस ने तीखा आघात किया है । इस आघात के फलस्वरूप कवि-दृष्टि का वैचारिक पुनर्जन्म हुआ है । अनुभूत्यात्मक स्तर पर तीव्रतम पीडाओं को जो अभिव्यक्ति हुई है यही इन कविताओं की मूल चेतना रही है ।

साही के चर्चित काव्यसंग्रह "साखी" में संकलित कविताओं की मानसिकता कुछ विशिष्ट अनुभव-खण्डों से गुज़रनेवाली दीख पडती है । इन कविताओं के बारे में साही की पत्नी श्रीमती कंअयनलता साही ने संकलन की अपनी भूमिका तैयार करते वक्त कहा है, "मैं ने अपनी समझ मे "साखी" के लिए उन्हीं कविताओं का चयन किया जो "साखो" के मिजाज के अनुकूल लगी । कुछ तो मुझे मालूम था और कुछ का रूपविन्यास स्पष्टतया "साखी" का था ।" साही के प्रथम काव्य-संग्रह "मछलीघर" के प्रकाशन के लंबे अन्तराल के बाद प्रस्तुत संकलन "साखी" उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुआ है । इस संकलन में कुल पैंसठ कवितायें हैं । इन कविताओं के संबंध में लिखी अपनी संक्षिप्त भूमिका में उन्होंने लिखा कि इन कविताओं का विषय तीन भागों में व्याप्त है -"उलटते-पुलटते जब गुनने लगा तो प्रस्तुत कविताओं में एक क्रम दीखा जो पहले नहीं दीखा था । उक्त क्रम का नाम मैं ने रखा - "शबीहें" । यानि अक्सर या तस्वीरें या छविचित्र । इन शबीहों के

---

1. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - प्रस्तुति - पृ.1

तीन विभाग दिखे - व्यक्ति, घटनायें और परिस्थितियाँ । बस इन तीन हिस्सों में बाँटकर कवितायें चुन ली ।"[1] यह साही का सामान्य वर्गीकरण-क्रम मात्र है । उनका प्रस्तुत संकलन समकालीन कविता की विशेषताओं से ओतप्रोत है ।

जीवन की समग्र-स्वीकृति

जीवन को समग्रता के साथ स्वीकार करने की एक रीति यद्यपि नई कविता में है तथापि उसका संपूर्ण विकास समकालीन कविता में हुआ है । पूर्ववर्ती छायावादी या प्रगतिवादी कविता ने जीवन के किसी एक अंश को स्वीकार किया था याने सुन्दरता को स्वीकारते हुए असुन्दरता के प्रति आँखें मूँदने की प्रवृत्ति उसमें थी । लेकिन समकालीन कविता ने सौंदर्य के साथ कुरूपता को, अच्छाई के साथ बुराई को भी अपने काव्य का कलेवर बनाने की चेष्टा की थी । जीवन की समग्र-स्वीकृति से यही मतलब है । याने उसके पास ऐसा कोई विषय नहीं जो कविता के लिए कथ्य न बना सके । क्योंकि वह आम आदमी की घुटन और टूटन को तथा उस पर कठोर यातना-भरी स्थितियों का चित्रण करनेवाली कविता है समकालीन कविता । इसलिए जगदीश गुप्त ने कहा, "नये मनुष्य की बात करना यथार्थ से भागना नहीं है । क्योंकि विविध संभावनाओं की चिन्ता करना आज के

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - वक्तव्य - पृ. ।

विश्वव्यापी नैतिक संकट का स्वाभाविक परिणाम है ।"[1] समकालीन कविता का भाव-पक्ष जीवन के विघटन से जुड़ा हुआ है ताकि कोई भी पहलु उसके लिए त्याज्य नहीं है । "समकालीन कविता अपने परिवेश के प्रति किसी भी पक्ष से प्रतिबद्ध नहीं -"[2] वाली उक्ति यहाँ इसलिए संगत लगती है । समकालीन कविता की यह विशेष मानसिकता साही की कविताओं में भी वर्तमान है क्योंकि साही समूचे जन-समुदाय का अगुआ रहे थे । "तीसरा सप्तक" में संकलित कविताओं में एवं "मछलीघर" की कविताओं में से इस मानसिकता की शुरूआत हुई है अवश्य । क्योंकि इन कविताओं का आधार जीवन का कठोर यथार्थ है । साही की कविता संबंधी अपनी आलोचना में कमलकुमार ने कहा, "मछलीघर" की कवितायें आन्तरिक और आत्मीय एकालाप की कवितायें हैं क्योंकि वर्तमान परिवेश के कवि के लिए यही उपयुक्त भी है ।"[3] क्योंकि साही इतिहास की रूढ़ियों से परिचय रखनेवाला कवि थे । अनुभवों की उर्वर भूमि कवि की एवं जनता की ज़िन्दगी है । इस ज़िन्दगी का लेखा-जोखा ही साही की कविता है । कम शब्दों में साही की दृष्टि हमेशा समग्रता पर थी । जीवन के प्रति अपनी दृष्टि समग्र रखते हुए साही लिखते हैं,

"किसने मुझे इस स्वनिर्मित केन्द्र में छोड़ दिया
जिसके चारों ओर खोखले समुद्र की तरह

---

1. कवितान्तर - सं. जगदीश गुप्त - पृ. 39
2. समसामयिक कविता में विसंगति - जगदीश नन्दिनी - पृ. 24
3. काव्य परंपरा और नई कविता की भूमिका - कमल कुमार - पृ. 102

सिर्फ आलोकहीन विस्तार है
और दूर किनारों पर ।"[1]

यहाँ पर भी आलोकहीन विस्तार एवं खोखले समुद्र जीवन की समग्रता के प्रतीक बनकर आनेवाले हैं । साही के "साखी" शीर्षक संकलन जीवन की विविधता एवं समग्रता का परिचय करानेवाली कई कविताओं को प्रस्तुत करनेवाला है -

"मेरे मन में उन तमाम सिगरटों का हिसाब है ।
सिगरटों का ही क्यों
रिक्शे के लिए दिये हुए पैसे का भी
और उन बिलों का भी
जो मैं ने चुकाये हैं ।"[2]

सिगरटों एवं बिलों का हिसाब रखना जीवन को समग्रता से देखनेवाले आदमी का स्वभाव है जिसको साही ने प्रस्तुत किया है । अतः जीवन की समग्रता साही को समकालीन कवि बनाने का एक उपक्रम मात्र है ।

साखी - शब्द की अर्थ व्याप्ति

साही के प्रस्तुत संकलन का शीर्षक अपने नयेपन के कारण विशेष विचारणीय है । "साखी" शब्द हमें सन्तकालीन काव्य

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 32
2. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 24

परंपरा की ओर ले चलता है । साही के इस शब्द-प्रयोग का निहितार्थ भी यही है । "साखी" की अन्तिम कुछ रचनाओं में से तथा "प्रार्थना गुरु कबीरदास के लिए" शीर्षक कविता से कवि का सन्त कबीर के प्रति विशेष आदर का भाव दीख रहा है । वस्तुत: ये भाव कबीर के प्रति प्रकट की गई कोई सामान्य विनम्रता तो नहीं ; बल्कि "साखियों" में प्रतिपादित विषय-वस्तु के साथ तादात्म्य प्राप्त करने की आकांक्षा का ही प्रकट रूप है ।

"साखी" शब्द संस्कृत के "साक्षी" शब्द का ही रूपान्तर है । इसका अर्थ है अपनी आँखों से देखी हुई और इसी कारण प्रमाण स्वरूप समझी जानेवाली बात । साखियों में साधारणत: अपने दैनिक जीवन में भली-भाँति अनुभव करने के बाद प्रमाणित की गई बात ही आती है । याने अपनी वास्तविक अनुभूति को व्यक्त करनेवाली बात "साखी" में है । आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "गुरु की साक्षी (साखी) करके किसी बात को कहने की प्रथा बहुत पुरानी है ।"[1] मसलन कबीर की साखियाँ उनके दार्शनिक ज्ञान की जानकारी का सबसे उत्तम साधन है । श्री रमेश चन्द्र शाह के कथन के अनुसार "साखी" के काव्य संसार में जहाँ चतुर्दिक फैली हुई निरन्तर गहराती विडम्बना और त्रास है, वहीं एक अंधविश्वास सरीखी आस्था

---

1. कबीर - हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - पृ. 18

का तेवर भी जो सचमुच अजीब लगता । यदि कविता का आन्तरिक साक्ष्य ही हमें आश्वस्त न करता कि यहाँ किसी रोमानी भ्रांति अथवा इच्छित चिन्तन की गुंजाइश नहीं हैं ; न किसी सरलीकरण की ।"[1] अत: "साखी" शब्द का अर्थ गहरा एवं व्यापक है ।

कविताओं का विषयगत आधार

जैसे कि साही ने सूचित किया है कि पूरी कविताओं को तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है तदर्थ कविता का मुख्य वस्तुगत आधार समकालीन परिदृश्य ही है । यह परिदृश्य व्यक्तियों से होकर, घटनाओं से होकर, परिस्थितियों तक व्याप्त है । कविमन पर इन तीनों ने तीखा आघात किया है । इस आघात के परिणाम स्वरूप कवि-दृष्टि का वैचारिक पुनर्जन्म हुआ है । याने अनुभूत्यात्मक स्तर पर तीव्रतम पीडाओं की जो अभिव्यक्ति हुई है, वही इन कविताओं का आधार है ।

संग्रह की कविताओं की मानसिकता, जैसे सूचित किया गया है, कुछ विशिष्ट अनुभव खण्डों से होकर गुज़रती

---

1. पूर्वग्रह-65 - सं. अशोक वाजपेई - रमेशचन्द्रशाह का लेख - पृ. 63

दीख रही है । लेकिन हर कविता की समाप्ति पर अनुभव-खण्डों की विशिष्टता लुप्त होकर सामान्यीकृत हो जाती है । असुरक्षित व्यक्ति की पीड़ाओं तथा आतंक के आक्रामक रूपों को पूरी सहजता के साथ देखनेवाले कवि की वैचारिकता संकलन के अन्त तक आते आते विद्रूप उक्तियों के साथ व्यक्त होती है । विद्रूपता उसकी अन्तिम परिणति है । पर साही की कविताओं में मूलत: यह प्रवृत्ति विद्यमान है ।

असुरक्षा बोध

साही ने सत्ता के आतंकवादी तेवर को अधिक चित्रित किया है । साधारण जनता का जीवन इतना निर्मूल्य एवं फिजूल बन गया है कि उसका कोई इतिहास ही न रहा हो । साही ने इस असामाजिक संदर्भ के खिलाफ आवाज़ उठायी है । मानवीयता का मतलब इस निरीह, निरक्षर, पीडित, उपेक्षित जन साधारण के वर्तमान को बदलने के लिए संघर्ष करना ही है । उनके दुख को अपना बना लेना साही जैसे कवि-व्यक्तित्व के लिए कोई नामुमकिन कार्य तो नहीं था । मनुष्य तभी तनुष्य कहने योग्य बनता है जब वह पशु-स्तरीय जीवन वृत्तियों से ऊपर उठता है । मूल्यों एवं आदर्शों के तहत पर सुरक्षित जीवन बिताने का माहौल जब उन्हें मिल जाता है । आधुनिक संदर्भ में मनुष्य एक प्रकार से अमानवीय तथा असुरक्षित जीवन बिता रहा है । इसके लिए राजनीतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारण तो हो

सकता है पर कवि साही इस असामाजिक वृत्तियों के खिलाफ आवाज़ उठाता है । क्योंकि वह आम जनता का पक्षधर कवि है । उनकी मुक्ति, उनकी सुरक्षा ही कवि का लक्ष्य रहा है । आम आदमी पर आ पड़नेवाली विपत्तियों पर कवि बेहद दुखी है,

"आओ अपनी उलझनों की एक दस्तावेज तैयार करे
सिरनामे पर लिखे
हमें आज तक कुछ नहीं बताया गया
तमाम वारदातें हमारी अनुपस्थिति में होती रही
और हर वारदात का निशाना हमारी ही
ओर था ।"[1]

समकालीन कविताओं का संग्रह "साखी" की "जिसकी कल्पना तुम ने की थी" शीर्षक उपरोक्त कविता में भी ऐसा ही भाव झलकता है जहाँ सुरक्षा के बदले असुरक्षित होने के कारण उत्पन्न विवशता का नंगा चित्र प्रस्तुत है । साही की कविता "बेनाम तकलीफों वाला बूढा" में भी यह मानसिकता यों अभिव्यक्त है -

"उसके चेहरे पर
बे हिसाब झुर्रियाँ हैं
और बातें करते समय
उसकी आँखें कुछ इस तरह पीली हो जाती हैं
जैसे उन में से अभी

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 9

दो पंजे निकलेंगे
और बहुत एहतियात के साथ
आप को वे सारी बातें समझाने लगेंगे
जो यहाँ नहीं
किसी और दुनियाँ में घटित हुई थी ।"[1]

यहाँ चेहरे पर झलकनेवाली झुर्रियाँ आदमी की निस्सहायता को सूचना देनेवाली हैं अवश्य । इसी भाव को उन्होंने फैन्टसी के धरातल पर "अन्धेरे मुसाफिर खाने में" शीर्षक कविता में प्रस्तुत किया है,

"वे लोग जो गाडी आने के बाद
सपाट मुर्दा शक्लें लिए
पहले तो आग की तरह
इधर उधर दौडते हैं
फिर निढाल, गुमसुम सफर के लिए
बैठ जाते हैं ।"[2]

इसी सिलसिले में साही की और एक कविता "बेनाम तकलीफों वाला बूढा" विशेष विचारणीय लग रहा है । वह आदमी इस कदर बूढा हो गया है कि उसके अंग-प्रत्यंग गल चुके हैं और अब "सफेद बालों में चिपका हुआ खाल बाकी" रह गया है । व्यक्ति-जीवन की असुरक्षित अवस्था प्रस्तुत पंक्ति दे रही है,

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 14
2. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 12

"मुझे उसके मकान के सामने गुज़रते
बरसों हो गये
और मैं ने उसे इस से ज़्यादा महत्व
कभी नहीं दिया
कि वह एक पुराने रोजनामचे की तरह
जिसकी बेनाम तकलीफों के लिए
मेरे सयाने युग में
सटीक और सन्तोषप्रद नाम दिये जा चुके हैं ।"[1]

यहाँ भी असुरक्षा का बोध उत्पन्न होने का प्रमुख कारण आतंक है । साही का नवीनतम काव्य संग्रह "संवाद तुम से" की पहली कविता "पितृहीन ईश्वर एक मेलोड्रामा" में उन्होंने इसी भाव को यों शब्दबद्ध किया है,

"नीले सागर तट पर जाकर
जिसके आगे राह नहीं है
अपनी आस्तिक छाती का सब ज़ोर लगाकर
मैं ने पूछा
"समय आ गया
राह देखती हैं आत्मायें
पिता कहाँ हो ?"
नहीं मिला कोई उत्तर

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 14-15

पागल सागर
उसी तरह फूलता और फूटता रहा ।"[1]

स्पष्ट है साही की कविता वर्तमान परिस्थिति के आतंक से पीडित जनसाधारण के यथार्थ को उद्घाटित करनेवाली कविता है ।

"संवाद तुम से" की भूमिका में साही ने वर्तमान परिस्थिति में व्याप्त असुरक्षा-बोध तथा कवि मन की आस्था को यों व्यक्त किया है -"..... आओ यह कथा कभी खत्म नहीं होती । वह एक अनन्त गाथा की तरह है और तुम सुनती जा रही हो और मैं कहता जा रहा हूँ - और मुझे एहसास होता है एक उमडते हुए महा प्यार का जो मेरे भीतर कहीं संचित है और मुझे इस जानकारी पर आश्चर्य हुआ है और फिर मैं एक विचित्र स्पन्दित आह्लाद से भर गया हूँ ।"[2] यहाँ अपने भीतर संचित महाप्यार जन साधारण के प्रति कवि का तीव्र प्रेम और भविष्य के प्रति आस्था की ओर इशारा है ।

साही के उक्त संकलन "संवाद तुम से" में यह समस्या उठती है कि संवाद किस से है ? कवि का संवाद जब अपने आप से तथा आस्वादन-पक्ष पर खडे होनेवाले पाठक से होता है तब

---

1. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 5
2. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 1

कविता का संप्रेषण पूर्ण हो जाता है, और कवि-कर्म सफल भी । "साखी" साही के दूसरे दौर की कविताओं का संग्रह है, जिसे आलोचकों ने संवाद की ओर बढ़ रही कवितायें कही हैं । मतलब साही के पहले दौर की कवितायें एकालाप की थीं । दूसरे दौर की "मछलीघर" और तीसरे दौर की "संवाद तुम से" की कवितायें आत्मविश्लेषण एवं संप्रेषण की कविताएँ हैं । इन में असुरक्षा का बोध काफी व्यापक नज़र आता है । अपनी परिस्थिति में आधुनिक मनुष्य जितना असुरक्षित रहता है इसकी सही पहचान साही की रचनाओं से होती है ।

"सारी प्रतीक्षा के बावजूद
घुड़सवार पहुँचता नहीं
बस सड़क जहाँ निगाहों में
ओझल हो जाती है ।"[1]

आधुनिक मानव की असुरक्षित अवस्था पर थोड़ा बहुत यहाँ विचारा है । समकालीन परिवेश ऐसा है जिसको वाणी देना समकालीन कविता की मज़बूरी एवं अनिवार्यता है । इसलिए वह साहित्य आधुनिक बनता है, "एक विशिष्ट अर्थ में यह कहे कि मनुष्य ही साहित्य का परिवेश है तो एक विशिष्ट साहित्य को ही ध्यान में रख रहे होंगे जिसे सामान्यत: आधुनिक साहित्य कहा जाता है ।"[2] यहाँ साही स्वयं सहमति प्रकट करते हैं कि हमारे परिवेश में कहीं असुरक्षा का भाव है या हम कहे कि

---

1. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 94
2. साहित्य का परिवेश - सं. सच्चिदानन्द वात्स्यायन - साही का लेख- पृ. 73

कहीं जडता आ गये हैं.....। "कुए में कोई गिर गया है" शीर्षक साही की और एक कविता में यह भाव काफी स्पष्ट है,

"धीरे धीरे लोगों ने यह पेशा ही छोड़ दिया
अब लोग या तो समतल पगडण्डियों पर चलते हैं
यह खबर पहुँचाते हैं
या मुआयना करते हैं
लेकिन कोई कुए में उतरने को तैयार नहीं होता
न जाने भीतर क्या मिले ?"[1]

वर्तमान ज़िन्दगी की यह असुरक्षा साही के संकलन "संवाद तुम से" की अधिकतर कविताओं में हैं,

"काम्प उठती गाँव की दुल्हन नवेली,
क्योंकि यह आवाज़ है
बंगाल की उन अप्सराओं की
कि जिनके पाश में बाँधकर
गाँव फिर आता नहीं
परदेसिया ।"[2]

यहाँ भी असुरक्षा का दूसरा आयाम अनावृत है -

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 21
2. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 12

"और उसने अपनी आँखें
ऊपर चमकते तारों
और नदी के रहस्यमय पानी
के बीच कहीं शून्य में टिका दीं
अन्धेरा जहाँ सबसे घना था ।
और अन्धकार में
अदृश्य पानी के बहने की आवाज़ें आती रहीं
सबेरे की हवा में
नदी किनारे उसे नहीं पाया
सिर्फ मिले जुले चरण चिह्न
जिन पर वह धुल की तरह
धीरे धीरे बालु की चादर डालती रही ।"[1]

जैसी पंक्तियों में कवि का असुरक्षाबोध प्रकृति के सभी पर्तों में दिखाई पड़ता है । जैसे कि उन्होंने इसकी सूचना अपनी पहली काव्य-कृति की कविताओं में यों दी हैं -

"मैं ने अन्धेरे के बीच से देखने की कोशिश की
और कुछ नहीं पाया
अदृश्य प्रवाह के अतिरिक्त
और मैं ने देर तक देखी हैं
गुज़रती संध्याएँ ।"[2]

---

1. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 90
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 3।

संक्षेप में कवि ने आम आदमी की ज्वलन्त समस्याओं को संप्रेषित करने का कार्य किया है और उसमें वे कामयाब भी निकले हैं ।

व्यंग्य-विद्रुपता

साठोत्तरी कविता के एक सशक्त हथियार के रूप में व्यंग्य को स्वीकारा गया है । नई कविता की व्यंग्य-विद्रुप दृष्टि को समकालीन कविता ने और तीक्ष्ण बनाकर अपना अभिन्न अंग बना दिया । मुक्तिबोध, जगदीश चतुर्वेदी, राजकमल चौधरी, सक्सेना जैसे कवि इसलिए नई कविता की परिधि से आगे आ गए हैं । क्योंकि उस समय राजनीति और शासन के क्षेत्र में घोर अराजकता व्यापी हुई थी । समकालीन कवि धूमिल के काव्य-संग्रह "संसद से सडक तक" में संसद राजनीति का और सडक मामूली आदमी का प्रतीक है । आम आदमी के जीवन की विडंबनाओं को उसकी पूरी गहराई के साथ अभिव्यक्त करने के लिए समकालीन कविता ने व्यंग्य एवं विद्रुप शैली को अपनाया । प्रयोगवाद से लेकर विडंबनागत व्यंग्य का यह सिलसिला कविता में ज़ोरदार है । यह निम्नस्तरीय हास्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं क्योंकि हास्य और व्यंग्य में काफी अन्तर है । आधुनिक कविता के व्यंग्य का संबंध आधुनिक जीवन की विद्रुपता से है, "आधुनिक कविता की विडंबनाओं को व्यक्त करने के लिए नई कविता में व्यंग्य-विद्रुप का माध्यम अपनाया गया था, जिसमें कुत्सित और

गर्हित का चित्रण भी सम्मिलित रहता था ।"[1] इस स्थिति से आगे जाकर समकालीन कवियों ने विद्रूपता को याने आक्रामक व्यंग्य-दृष्टि को अपनाया । साही की कविताओं की प्रासंगिकता यही असन्दिग्ध हो उठती है ।

व्यंग्य-विद्रूप की दृष्टि साही में पहले ही वर्तमान थी । "तीसरा सप्तक" में प्रकाशित साही का आत्म-वक्तव्य पच्चीस शीलों के रूप में हैं । शील-निर्धारण ही एक प्रकार से व्यंग्य का गहरा रूप है और इस में अन्तिम शील "अवज्ञा परोधर्मः" है । प्रस्तुत शील की आक्रामक स्थिति की तह में वर्तमान यथार्थ की अवज्ञा से उपजा हुआ रोष है जिसने बाद की रचनाओं में व्यंग्य का रूप धारण कर लिया है । "साखी" शीर्षक ही व्यंग्यात्मक है । दूसरी कुछेक कविताओं में; खासकर सन्तों को किये गये विनय के रूप में अभिव्यक्त कविताओं में व्यंग्य के नये नये आयाम खुल जाते हैं । इसकी "बहस के बाद" शीर्षक कविता राजनीतिक परिस्थिति पर लिखी हास्यात्मक कविता है जो अपनी सपाट बयानी के कारण व्यंग्य के गहरे संदर्भों को छू लेती है । तत्कालीन समय के अर्थहीन राजनीतिक वातावरण (आज भी स्थिति भिन्न नहीं है) एवं शासन के खोखलेपन की ओर यह कविता संकेत कर रही है । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धूमिल जैसे कवियों के समान साही भी वर्तमान सामाजिक

---

1. नई कविता सीमायें और संभावनायें - गिरिजाकुमार माथुर - पृ. 113

अव्यवस्था और राजनीतिक भ्रष्टाचारिता का तीखा व्यंग्य-चित्र प्रस्तुत किया है,

"असली सवाल है कि मुख्य मंत्री कौन होगा ?
नहीं नहीं असली सवाल है
कि टाकुरों को इस बार कितने टिकट मिले ?
नहीं नहीं असली सवाल है
कि जिले से इस बार कितने मंत्री होंगे ?
नहीं नहीं असली सवाल है ।"[1]

राजनैतिक खोखलेपन की ओर यह कविता संकेत कर रही है ।

"उस रोज़ यही पर आकर थी रुक गई कथा
फिर नीन्द आ गई तुम्हें और
मुझको भी ऐसा हुआ कि मैं
फिर आगे तुम से कह न सका
है बहुत दिनों की बात तुम्हें
शायद यह घटना भी जब बिलकुल याद न हो ।"[2]

सामयिक मूल्य-विघटन के संदर्भ में कभी कभी कवि के निस्संग हो जाने का प्रमाण है यह कविता । "अस्पताल" शीर्षक कविता में कवि ने जीवन की प्रताडना को हठयोग की चरम स्थिति के साथ जोडकर अनाहद नाद की अनुभूति के समय कराहते मनुष्य की वेदना के रूप में चित्रित किया है ।

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 88
2. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 75

"क्या करूँ" शीर्षक कविता में सर्वत्र यही एक बुनियादी सवाल पूछा गया है कि क्या करूँ ? वस्तुत: यह सवाल सर्जकों के बीच में है, तदर्थ कविता के साथ प्रकट किया गया निर्मम व्यंग्य है -

"वे जो दूर से
×× ×× ××
दास कबीर कहता है
भाई तुलसी दास
अब मैं क्या करूँ ?"[1]

"साखी" संकलन की अन्तिम कविता "प्रार्थना गुरु कबीर दास के लिए" साही की व्यंग्यात्मक दृष्टि का सशक्त उदाहरण है और वह कविता उनके काव्यबोध में आये गुणात्मक परिवर्तन को भी सूचित कर रही है -

"परम गुरु
दो तो ऐसी विनम्रता दो
कि अन्तहीन सहानुभूति की वाणी बोल सकूँ
और यह अन्तहीन सहानुभूति
पाखण्ड न लगे ।"[2]

यहाँ विनम्रता के बीचों बीच प्रकट किये गये इस स्पष्टीकरण में उनका विद्रोही स्वर गुंजायमान है । कवि ने व्यंग्य-विद्रूपता को कबीर के एक प्रसिद्ध दोहे की छाया में यों व्यक्त किया है,

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 140
2. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 148

"सब से भली यह चक्की है
जिसके द्वारा
संसार पीस खाता है
क्या सचमुच सब से भली यह चक्की है
जिसके दो पाट्टों के बीच में
कोई साबुत नहीं बचता
अब ?"[1]

"क्या करूँ ?" कविता में उनका विद्रुपता-बोध एक बुनियादी सवाल के रूप में परिणत हो जाता है । इसमें सर्वत्र यही एक बुनियादी सवाल पूछा गया है कि क्या करूँ ? दर असल सर्जकों के बीच का है यह सवाल, तदर्थ कविता के साथ प्रकट किया गया निर्मम व्यंग्य है -

"लात खाया सन्त कहता है
वेद व्यास भाई
अब मैं क्या करूँ ?"[2]

मध्यवर्ग में कभी कभी दिखाई पडनेवाले बडपन को साही ने अपने नवीनतम काव्य संग्रह "संवाद तुम से" में यों व्यक्त किया है,

"कैमरे से फोटो लेना चाहते हो
तो बहुत दूर क्यों जाओगे ?
उस पहाड से मुडकर
आगे तसवीरें खींच लेना

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 147
2. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 140

बहुत तसवीरें मिलेगी
और घर लौटकर दिखाने को भी रहेगा
कि मैं कितना पहाड पार कर
आया
अखबार में लिखोगे ?
ज़रूर लिखना
बहुत लोग इतना ही पहाड
जानते हैं ।[1]

संक्षेप में व्यंग्य-विद्रुपता ने जो समकालीन कविता को एक प्रमुख प्रवृत्ति है, साही के काव्य में और शक्तिशाली रूप धारण कर लिया है । समकालीन यथार्थ के प्रति कवि की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक उनकी व्यंग्य-विद्रुप दृष्टि है ।

सपाट कथन

कविता जब आम आदमी के साथ का निकटतम संवाद बन जाती है तब से सपाट कथन उसकी अभिन्न शैली भी । यहाँ कवि कुछ छिपाता नहीं बल्कि सब कुछ खोल देता है । आम आदमी के जीवन की वास्तविक धड़कनों को अपने में समाहित करनेवाली कविता है समकालीन कविता । उसका कथ्य आम आदमी का सत्य है ।

---

1. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 30

इस सत्य को उन्हीं की भाषा एवं शैली में कवि प्रस्तुत करता है । इसलिए सपाट कथन याने सपाट बयानी समकालीन कविता की अपनी अलग खासियत है ।

विजयदेव नारायण साही की कविताओं में भी यह सपाटता वर्तमान है । संवाद शैली साही की अपनी विशेषता है । मैं - तुम शैली को अपनाकर उनकी कविता और अधिक सपाट बन गई है । क्योंकि नये कवियों ने यह महसूस किया कि भाषा का वास्तविक संबंध जन-जीवन से है । अत: साही ने भी अपनी कविताओं में यह साबित करने की कोशिश की है,

"क्या मैं जाऊँ उस पार
जहाँ ओस भरी घास रसीले
होठों की तरह आभा देती है ।
अकेले पीले फूल
अनिश्चित चिड़िया की तरह
पंख खोल खोलकर रह जाता ।"[1]

साही की उपरोक्त पंक्तियों में भाषा का प्रवाह स्पष्ट होता है । बातें करते करते आगे बढ़नेवाला एक खास तरीका इसमें है जो गद्य के निकट तक आ गया है । इसके अलावा सीधे बुलाकर कहने की रीति

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 26

भी साही की कविताओं को अपनी है,

"क्या तुम भी वही सोच रहे हो जो मैं सोचता हूँ
क्या कब हम इस निर्वाद को
कभी नहीं तोड़ सकेंगे ?
क्या हमारी ज़िन्दगी
इसी एक दुर्घटना को देखते रहने की कोशिश में
खत्म हो जायेगी ?"[1]

साही की समकालीन कविताओं का संकलन "संवाद तुम से" में यह सपाट-बयानी हर कहीं मिलती हैं जैसे -

"सत्य है कि तुम ने इस बार नहीं
काटे मेरे उगे पंख
कुछ नहीं छोड़ा
मेरा सब मुझ को लौटा दिया,
मन की निर्बन्ध प्यास, ऋद्धियाँ भुजाओं की
पैरों की अथक जलन, वक्ष की उदात्तता
जो कुछ था मुझ में
सब पहले-सा जोड़ दिया"[2]

साही की कविता में दिखाई पड़नेवाली नाटकीयता उनके काव्य-शिल्प के विकास को सूचित करती है । इसका भी संकेत करने के बगैर उनकी काव्य-शैली की चर्चा अधूरी रहेगी ।

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 29
2. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 79

नाटकीय संवाद

कविता को समकालीन बनानेवाले तत्वों में संवाद नितान्त नूतन शैली है । इसकी शुरूआत, दर असल, नई कविता के विकास के साथ हुई थी । साही ने नाटकीय संवाद को अपनाया और "तीसरा सप्तक" संकलन में उनकी कविताओं से लेकर यह शैली लगातार विद्यमान है । "तीसरा सप्तक"की "हिमालय के आँसू" शीर्षक कविता में संवाद-शैली का अच्छा उदाहरण देख सकते हैं,

"मत डरो
मैं नहीं तुम्हें समझाऊँगा इसे कहकर
मैं नहीं तुम्हारे प्यारे आँसू पोंछूँगा
मैं नहीं घटाऊँगा इस संकट का महत्व" [1]

आगे के संकलन "मछलीघर" में इसे यों शब्दबद्ध करते हैं -

"मैं ने पूछा था तुम कहाँ हो ?
तुम ने कहा मैं इतिहास के बाहर चला गया हूँ" [2]

"साखी" संकलन में भी साही ने इस प्रकार के बहुत सारे प्रसंग प्रस्तुत किये हैं,

"आओ मैं खिड़की से तुम्हें
एक अद्भुत दृश्य दिखाऊँगा

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 182
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 27

रोशनी से बिन्ध उस कमरे में
वही आदमी रहता है"[1]

इस संकलन की "संलाप में एक कविता" पूर्णत: संलाप शैली में लिखी गई है । इस में आदि से अंत तक स्वकथन एवं प्रश्नोत्तर शैली विद्यमान है

"क्या मैं सो गया था ?
नहीं । मैं ही इस बीच में बदल गया हूँ
फिर तुम परिचित क्यों लग रहे हो ?
क्योंकि पहले भी मैं यही था ।
तुम ने मेरे साथ क्या किया ?
मैं ने तुम्हारे असमंजस्य को निचोड दिया है
अब तुम्हें साफ दिखेगा ।"[2]

यहाँ शैली की सादगी विशेष उल्लेखनीय है जो साही की काव्य-भाषा की अपनी एक निजी शैली एवं विशेषता है । "संवाद तुम से" शीर्षक काव्य-संकलन में भी इसका विभिन्न संदर्भ दिखाई देता है -

"आज मैं ने फिर वही फूल नदी में बहते देखा
बडा सा, ताज़ा, चम्पारंग
नीचे रंग बिरंगी बजरियों पर
सरकती हुई नदी
कितनी तेज है

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 11
2. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 136

यह उस फूल के बहाव से
फिर लगा ।"[1]

साही की "आवाज़ हमारी जायेगी" शीर्षक नव्यतम संकलन की कविता "पास हो तुम दूर बनकर" में भी यह सपाटता वर्तमान है और वह यों हैं -

"पास हो तुम दूर बनकर
देखता है पथ तुम्हारा व्योम का विस्तार सूना
क्या भुला देगा तुम्हें यह स्वार्थ में संसार भूला
प्राण जाओ आज मेरे बन्धनों से क्रूर बनकर
पास रहो तुम दूर बनकर"[2]

संक्षेप में साही ने संवाद शैली में वर्तमान जीवन की धड़कनों को काव्यबद्ध करने का स्तुत्य कार्य किया है । वरिष्ठ आलोचक नामवरसिंह ने इसके संबंध में अपनी टिप्पणी यों व्यक्त की है -"उनका चर्चित संग्रह "मछलीघर" की अधिकांश कविताओं में स्वयं साही ने बातचीत की इस लय के सहारे जीवन की धड़कन को काव्यबद्ध करने का प्रयास किया है जिसके प्रवाह में अलग अलग शब्दों के अस्तित्व का बोध होने के स्थान पर एकतानता का एहसास होता है ।"[3] साही की कविताओं को यह नाटकीय संवाद-शैली समकालीन कविता की उपलब्धि भी है ।

---

1. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 101
2. आवाज़ हमारी जायेगी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 21
3. कविता के नये प्रतिमान - नामवरसिंह - पृ. 84

ज़ाहिर है साही एक ऐसा कवि है जिन्होंने अपने व्यक्ति-जीवन में ही नहीं रचना के क्षेत्र में भी प्रगतिशील चेतना को अपनाकर समकालीन कवियों के बीच अपना प्रमुख स्थान पा लिया है । समकालीन कविता की सभी प्रवृत्तियाँ उनकी कविता में उपलब्ध हैं । समकालीन जीवन-संदर्भों से उद्भूत काव्य संवेदना के सही संप्रेषण के कारण उनकी कविताएँ एक ओर बिलकुल समकालीन बन गई है तो दूसरी ओर समसामयिकता के सरहदों को तोड़कर कालयात्री बनने की क्षमता रखती हैं ।

छठवाँ अध्याय
==========

साही की कविता का शिल्प-पक्ष

छठवाँ अध्याय

साहो की कविता का शिल्प-पक्ष

कविता का एक अविभाज्य अंग है शिल्प । इसलिए कविता में शिल्प को कथ्य का समान स्थान है । काव्य-कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढाँचा तैयार किया जाता है वे सब काव्य के शिल्प कहे जाते हैं, "शिल्प विधि का बोध अंग्रेज़ी के "टेकनीक" शब्द से किया जाता है ।"[1] रचना में कथ्य को छोड़कर भाषा, शैली, बिंब, प्रतीक, फैन्टसी आदि शिल्प के अन्तर्गत आनेवाले तत्व हैं । समय के चलते प्रवाह के अनुसार काव्य के कथ्य में बदलाव की अनिवार्यता तत्कालीन कवियों ने महसूस की है । डा. अशोक त्रिपाठी ने कहा है -"वर्तमान युग में जब कि कविता का मूल कथ्य वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप निरन्तर जटिल होती हुई ज़िन्दगी, खण्डित जीवन बोध और आस्था-अनास्था के बीच झूलते हुए मानव का आन्तरिक द्वन्द्व चित्रण है, भाषा और शिल्प का जटिल होना अनिवार्य है ।"[2] अर्थात् शिल्प संबंधी अवधारणा समय समय पर बदलती रहती है । इसलिए द्विवेदी युगीन काव्य शिल्प से छायावादी काव्य-शिल्प और छायावाद से प्रगतिवादी-प्रयोगवादी काव्य शिल्प में बहुत बड़ा बदलाव नज़र आता है ।

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - कैलाश वाजपेई - पृ. 23
2. समकालीन हिन्दी कविता - डा. अशोक त्रिपाठी - पृ. 234

शिल्प की पूर्व पीठिका

द्विवेदी युगीन कविता हिन्दी कविता के शैशवकाल की कविता है । इसलिए शैशव-सहज सभी कमियाँ उस में देखने को मिलती हैं । यहाँ काव्य कथ्य एवं शिल्प का भी वाँछित विकास नहीं हो पाया था । इसलिए कथ्य एवं शिल्प का वाँछित संयोग नहीं हुआ है । दोनों का अलग-अलग अस्तित्व है । कवि किसी मनचाहे छन्द या अलंकार के प्रयोग के लिए कविता करता है । जान बूझकर किसी छन्द का प्रयोग या अन्य काव्यांगों का प्रयोग करने के लिए कवि तैयार हो उठता है । अतः द्विवेदी युगीन कविता का कथ्य विशेष शिल्प में रख दिया हुआ होता है । इसी कारण दोनों को अलग कर सकते हैं । दोनों का अलग अस्तित्व है । इस प्रकार अलग करने से कविता को कोई हानि नहीं होती ।

"यवन राज्य में उठा पटक के देख इस भारत ने दौर
घर को आग लगे जब तृण से चढ़ आता है कोई और
जो व्यापारी, धन लोलुप जन वहीं बने भारत साम्राट
लगा बिगड़ने दास वृत्ति से इस भारत का रूप विराट

xx xx xx xx xx xx

ठीक सामने वह निकुंज है जिसमें सदा विराजे
जहाँ बजे थे नित्य स्नेह की झंकारों के बाजे ।"[1]

---

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त - ताराचन्दपाल "बेकल" - पृ. 47

छायावादी कविता में शिल्प काव्य और निकट आ गया है । फिर भी वह पूर्णत: काव्य-कथ्य के साथ मिला हुआ नहीं । छायावादी कवियों में प्रसाद एवं महादेवी में यही प्रवृत्ति बनी रहती है । पर निराला में कथ्य और शिल्प का अद्भुत मिलन देखने को मिलता है । निराला को "सन्ध्या सुन्दरी", "भिक्षुक", "सरोज स्मृति" जैसी कविताओं से शिल्प को अलगाना असंभव ही नहीं वह अनुचित भी है ।

"कहता तेरा प्रयाण सविनय
कोई न था अन्य भावोदय
श्रावण नभ का स्तब्धान्धकार
शुक्ला प्रथमा कर गई पार

धन्ये मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय"[1]

भिक्षुक नामक कविता की पंक्तियाँ देखिए -

---

1. राग विराग - निराला - सरोज स्मृति - पृ. 94

"वह आता
दो टूक कलेजे को करता
पछताता
पथ पर आता "[1]

स्पष्ट है इनमें कथ्य एवं शिल्प पक्ष का एक फ्यूज़न हुआ है । इसलिए उसको अलगाना असंभव बन गया है ।

पर छायावादी कवियों में शब्द परिष्कार सब से अधिक पन्त में देखने को मिलता है, "निराला और प्रसाद में पन्त की तुलना में शब्द-परिष्कार कम है । उनमें एक प्रकार से द्विवेदी युग का अनगढपन है सूक्ष्म कल्पनाशीलता है ।"[2] छायावाद में सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का परिष्कार किया गया । मात्र भाषा का ही नहीं सभी काव्यांगों का नये ढंग से प्रयोग किया जाने लगा -

"अभी गिरा रवि ताम्र कलश सा
गंगा के उस पार
क्लान्त पान्थ जिह्वा विलोल
जल में रक्ताभ पसार"[3]

---

1. राग विराग - निराला - भिक्षुक - पृ. 18
2. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - कैलाश वाजपेई - पृ. 17
3. युगवाणी - सुमित्रानन्दन पंत - पृ. 37

"स्वर्ण, सुख, श्री सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब वीर"[1]

यहाँ से शिल्प काव्य का एक अभिन्न अंग मानने लगा । इसका प्रत्यक्ष एवं सशक्त प्रमाण निराला का काव्य है -

"रुद्ध कोष है क्षुब्ध तोष
अंगना अंग से लिपटे भी
आतंक-अंक पर काम्प रहे है
धनी वज्र गर्जन से बादल
त्रस्त-नयन-मुख दाम्प रहे है"[2]

छायावाद से लेकर नई कविता तक काव्य शिल्प में नए नए प्रयोग होते रहे हैं । परिणामत: कविता और आदमी के बीच का फासला मिटता गया, "छायावादोत्तर कवियों ने जीवन की भाषा को अपनाते हुए छायावादी भाषा और आम बोलचाल की भाषा के बीच गहरी खाई को पाटने का प्रयत्न किया ।"[3] लेकिन छायावादोत्तर कविता परंपरागत काव्यशैली का संपूर्ण तिरस्कार करनेवाली कविता

---

1. तारापथ - सुमित्रानन्दन पंत - पृ. 60
2. राग विराग - निराला - बदल राग - पृ. 58
3. आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब विधान - केदारनाथ सिंह - पृ. 176

नहीं थी बल्कि वह परंपरा का निषेध एवं ग्रहण की कविता है । वह उस में से कुछ अंशों को स्वीकार करने के साथ अधिकांश को छोड़ती भी है । अस्वीकार का भाव प्राय: अपने रूपबन्ध की प्रगतिशीलता के कारण है, "नई कविता ने कविता की पूर्व प्रचलित समस्त अवधारणाओं को युग-जीवन की आवश्यकतानुरूप ढालकर नयी अर्थवत्ता देते हुए अपना स्वरूप निर्धारित किया ।"[1] अत: कथ्य के समान शिल्प के संदर्भ में भी नई कविता में काफी परिवर्तन देखने को मिलता है । क्योंकि उसके मूल में आधुनिक युग का संपूर्ण परिवेश है ।

प्रगतिवादी कलाकार शिल्प के महत्व को स्वीकार करते हुए भी वह वस्तु को समान महत्व नहीं देता । वह यह मानता है कि वस्तु को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए शिल्प की आवश्यकता है । वस्तु के मूल्य पर शिल्प का महत्व उसे कतई ग्राह्य नहीं है । उसका विचार है कि वस्तु किसी भी कलाकृति का प्राण होती है शिल्प उस से भिन्न कोई महत्व नहीं रखता । रूपविधान के प्रति प्रयोगवादी तथा मध्यवर्गीय कवि विशेष सचेत रहे हैं, "बदलते जीवन और बदली हुई भाषा के अनुसार कविता की रचना-प्रक्रिया और विषय-निरूपण के प्रति कवियों के दृष्टिकोण में किस प्रकार परिवर्तन होता है इसे हम खड़ोबोली की प्रारंभिक कविताओं तथा आज की कविताओं को आमने-सामने

---

1. नई कविता - देवराज - पृ. 9

रखकर भली-भाँति देख सकते हैं ।"[1] इसका मतलब रूप-परिवर्तन के साथ बदलनेवाले काव्यबोध से है । अत: आधुनिक कविता में शिल्प सैद्धान्तिक पक्ष का आधार मात्र नहीं, उसको कविता की मूल संवेदना से अलग करके देखना भी समीचीन नहीं है ।

प्रयोगवादी कवियों में "तारसप्तकीय" कवि गिरिजाकुमार माथुर ने कविता की टेकनीक पर विशेष रूप से ज़ोर दिया है । उनका कथन है, "कविता में विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान दिया है । टेकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है । इसी कारण चित्र को अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं वातावरण के रंग उसमें भरता हूँ ।"[2] इस कथन में भी शिल्प की वाँछनीयता पर बल दिया गया है । अज्ञेय भी इस प्रकरण का अपने ढंग से समर्थन करते हैं । उनके अनुसार, राग वही रहने पर भी रागात्मक संबंधों की प्रणालियाँ बदल गई हैं । प्रेम अब भी प्रेम है और घृणा अब भी घृणा ।"[3] यहाँ भी रागात्मक प्रणालियों का संबंध संवेदना एवं अभिव्यक्ति-पद्धति से है । अत: कविता का रूप और कथ्य एक दूसरे से अभिन्नत: जुड़ा हुआ है । सृजन-प्रक्रिया को अन्त:प्रेरणा हर

---

1. नई कविता सं. जगदीश गुप्त और साही - पृ. 72
2. तारसप्तक - सं. अज्ञेय - पृ. 75
3. कवि दृष्टि - अज्ञेय - पृ. 75

कला माध्यम में समान रूप से वर्तमान है । रचना-प्रक्रिया का विषय-निरूपण में अवश्य स्थान है । इन सब के कारण कविता के परिवर्तन के साथ साथ शिल्प-प्रवृत्ति भी परिवर्तित रही । रूपबन्ध पर निदर्शित यह नवीनता आधुनिक कविता की नई प्रवृत्तियों में प्रमुख बन गई है, "विविध प्रयोगों के परिणाम स्वरूप बदले परिवेश का चित्रण करना परंपरागत भाषा की सामर्थ्य से बाहर था ।"[1] क्योंकि भाषा का परिष्कार शिल्प-परिष्कार ही है ।

नई कविता अपने कथ्य की नवीनता के अनुरूप अभिव्यक्ति की नई प्रणालियाँ तलाशती रहीं । रचनाकारों ने अभिव्यक्ति के संदर्भ में काव्यभाषा को प्राथमिकता दी । अज्ञेय लिखते हैं, "काव्य सब से पहले शब्द है और सब से अन्त में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है ।"[2] नई कविता की भाषा की यह बहुत बडी विशेषता थी कि उसमें लोकभाषा के तत्त्व समाहित हैं ।

साही की कविता नई कविता का एक सशक्त मुहावरा प्रस्तुत कर रही है । उनके काव्य-शिल्प पर विचार करते समय इस

---

1. नई कविता - देवराज - पृ. 93
2. तारसप्तक - सं. अज्ञेय - पृ. 30

नये मुहावरे को रेखांकित किए बगैर हम आगे बढ़ नहीं सकते । साही का चिन्तन जहाँ कहीं मौलिक दिशाओं को छू रहा है, वहीं उनकी कविताऐं एक नए शिल्प-क्रम की माँग कर रही है ।

काव्य-भाषा

छायावाद के बाद भाषापरक सजगता का स्पष्ट चित्र हमें मिल जाता है । प्रयोगवाद से काव्य भाषा में कारगर परिवर्तन आता रहा है । भाषा उत्तरोत्तर आम जनता की भाषा से निकटतम संबंध स्थापित करने लगी । यह सचमुच आम जनता एवं उसके यथार्थ की गहरी पहचान का परिणाम है । अज्ञेय ने जहाँ शब्द पर ज़ोर दिया वहाँ से भाषापरक परिष्कार काफ़ी ज़ोर पकडने लगा । "काव्य सब से पहले शब्द है ।"[1] कविता में भाषा का प्रश्न आज केवल अभिव्यक्ति से संबद्ध नहीं है वह "सामाजिक चेतना, मूल्यबोध, वैचारिक दृष्टि, संवेदना आदि से जुडा हुआ है ।"[2] भाषा के प्रति सजगता आधुनिक कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है । क्योंकि मनुष्य के अन्तरंग यथार्थ की पहचान के सिलसिले में पुरानी भाषा एवं शब्द अप्रासंगिक निकले हैं । आज कवि के सामने नई भाषा की समस्या है । क्योंकि भाषा अनुभव एवं सोच दोनों का माध्यम है, "भाषा अनुभव

---

1. तारसप्तक - सं. अज्ञेय - पृ. 30
2. नई कविता का आत्मसंघर्ष - मुक्तिबोध - पृ. 89

का भी माध्यम है और सोच का भी ।"[1] इसलिए समकालीन कविता छायावादी अलंकृत भाषा से स्वयं अलग रहती है । उसका भाषा-संसार एक स्वतंत्र अध्ययन की माँग करता है, "नई कविता की भाषा की यह महत्वपूर्ण प्रकृति है कि वह किसी एक पद्धति से बाँधकर नहीं चलती ।"[2] "मछलीघर" की कविताओं में साही ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह उसके भावबोध के लिए उपयुक्त है । साफ सुथरी और सूक्ष्म भाषा का प्रयोग इसकी विशेषता है जो किसी प्रकार के कृत्रिम साज-सजावट से मुक्त है -

"तुम चाहे तो
उसे हाथ में लेकर
उसके नरम शरीर को
सहला सकते हो
लेकिन उसकी गरदन लटकी रहेगी
और पंजे सिकुड़े रहेंगे ।"[3]

उपरोक्त पंक्तियों की अकृत्रिम भाषा का प्रयोग विशेष उल्लेखनीय है । अपने अनुभव की अद्वितीयता को निजी और आत्मीय बनाने की भाषा का प्रयोग उन्होंने किया है । इसके संबंध में साही ने स्वयं लिखा है - "हिन्दी कविता में पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में जो विराट परिवर्तन हुआ उसके पीछे यह गहरा अनुभव है कि आज के विशाल जीवन-सागर

---

1. जिरह - श्रीकान्त वर्मा - पृ. 59
2. नई कविता - देवराज - पृ. 93
3. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 3

के उतार-चढाव को उसके प्रामाणिक अस्तित्व को बातचीत की लय के माध्यम से ही पकड़ा जा सकता है । उस लय की तलाश ही अभिव्यक्ति की तलाश है ।"[1] साही को भाषा में फैलाव है और भाषा को सार्थक बनाने के हेतु उन्होंने नये प्रतीकों, नये बिंबों और कई प्रकार के माध्यमों का प्रयोग किया है । काव्य भाषा का अपना निजीपन यों है,

"तुम्हें विश्वास नहीं होता
लेकिन उसके पास कहने को कुछ नहीं है
सिर्फ उसकी आवाज़ में
एक मिठास है
जैसे वह बहुत दूर से लौटा हो"[2]

क्योंकि सामाजिक परिस्थिति से असन्तुष्ट साहित्यकार अपनी पुरानी जड़ मान्यताओं और मूल्यों को नकारते हैं और साथ ही पुरानी भाषा से भी मुक्ति माँगते हैं । इसलिए भाषा की सादगी पर साही ने विशेष रूप से ज़ोर दिया है,

"क्या तुम भी वही सोच रहे हो
जो मैं सोचता हूँ
क्या अब हम सब निर्वाद को

---

1. कल्पना - जून 1964 - साही का लेख - पृ. 324
2. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 11

कभी नहीं तोड़ सकेंगे ?
क्या हमारी ज़िन्दगी
इसी एक दुर्घटना को देखते रहने की कोशिश में
खत्म जो जायगी ?"[1]

साही की समकालीन कविताओं का संग्रह "संवाद तुम से" में इस प्रकार भाषा की सजगता एवं सहजता का कई उदाहरण देख सकते हैं -

"हाँ मैं वही पुराना द्रोही
आज तुम्हारी व्यथित अनास्था की साक्षी दे
निरवलम्ब मानवता को आमंत्रित करता
तुम्हें चुनौती फिर देता हूँ
पितृहीन होना ही केवल
यदि ईश्वरत्व का लक्षण है
तो हम सब के सब ईश्वर है ।"[2]

यह सादगी साही की मात्र कविता से संबंधित नहीं समूचे साहित्य से इसका सरोकार है । क्योंकि सप्तक काव्य परंपरा के प्रकाशन के समय ही काव्य भाषा में परिवर्तन की अनिवार्यता पर अज्ञेय जैसे कवियों ने ज़ोर दिया था । काव्य-भाषा का परिष्कार नये कवियों का मुख्य इरादा बन गया था । क्योंकि विषय जितना भी नवीन हो उसे

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 29
2. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 7

पुरानी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करना कठिन कार्य है । नई कविता के लिए नई भाषा की खोज से मतलब भाषा में सर्जनात्मक व्यापकत्व है, "संदर्भ बदल जाने के कारण पूर्ववर्ती कवियों की काव्य-भाषा आज के कवि के अपने सृजन के लिए अनुपयोगी लग सकती है ।"[1] साही की भाषा का प्रवाह विशेष उल्लेखनीय है जहाँ बातें करते करते आगे बढनेवाला है । एक खास तरीका इसमें है जो गद्य के निकट तक पहुँच जाता है,

"बावल वसन्त तुम आए कोंपलों के साथ
वह धूल, वही हवा, वही किलकारियाँ ।
मैं ने यदि यह बस कृतार्थ हो
खुले हुए कक्ष के झरोखों से
गुज़र जाना दिया हो ।
तो तुम फिर आना,
फिर आना, फिर आना तुम ।"[2]

यह संबोधन शैली है जो साही के "मछलीघर", "साखी", "संवाद तुम से" जैसे सभी संकलनों में दिखाई पड़ती है ।

"वहाँ वे भी थे
जो कुचले गये थे
उन्होंने भुजा उठा कर कहा

---

1. कविता के नये प्रतिमान - नामवरसिंह - पृ. 106
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 68

हम इसे नहीं मानते
हमारे विद्रोही ये हैं
जिनसे हमारा काम निकलता है
हम किसी और विद्रोही को नहीं जानते।[1]

इस शैली में "साखी" की ये पंक्तियाँ उद्धरणीय है । उनकी काव्य भाषा एक खास माने में इतिहास-सतर्क भाषा है । इतिहास को किसी खास घटना, पात्र या जगह को वे केन्द्र में नहीं रखते । इतिहास के किसी या किन्हीं अनाम अनुभवों को अचानक हमारे अन्दर जगा देने में शायद ही कोई उनकी बराबरी कर सका है,

"आधी रात
जब बर्बर सेनानी
अपने अपने तम्बुओं में
रोशन पत्थरों पर सिक्के बजाते है
तुम क्यों उनके शिविरों से निकलकर
हमारे नगर की प्राचीरों पर
दस्तक देते हो ?"[2]

"मछलीघर" की उपरोक्त पंक्तियों में प्रस्तुत बोध उसी शैली में अभिव्यक्त किया गया है । इस प्रकार की विशेष भाषा-शैली के कारण साही के

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 35
2. मछलीघर-विजयदेव नारायण साही - पृ. 79-80

"साखी" संकलन को संवाद की ओर बढ रही कवितायें कही जाती हैं । आगे की रचना "संवाद तुम से" नाम से ही स्पष्ट यह विशेषता स्पष्ट हो जाती है । "संवाद तुम से" की कविताओं को देखे तो हमारा ध्यान उनकी स्थापनाओं से बढकर उनके शिल्प पर जाता है और साफ लगता है कि उनकी कविताओं की विशिष्टता उनका रचाव है जो उन्हें अपने तमाम संकलनों से अलग करती है.....।"[1] साही की काव्य-शैली के संदर्भ में यह बिलकुल सही है कि उनकी काव्य-भाषा का अपना निजीपन है ।

नाटकीय शैली

नई कविता ने सरल कथन को जो रीति अपनाई है उसका विकसित रूप साही की कविताओं में स्पष्ट है । वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसे खुल्लम खुल्लम सपाट शैली में प्रस्तुत कर देते हैं । इसके लिए उन्होंने नाटकीय शैली को अपना लिया । मैं-तुम-वह जैसे सर्वनामों का प्रयोग साही की भाषा की शैली है या उनके काव्य शिल्प की अपनी खासियत है । समकालीन जटिलता से उभरी साही की शैली उनकी लम्बी कविता "अलविदा" से लेकर अधिकांश कविताओं में देखने को मिलती है -

---

1 दस्तावेज़ - सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - श्रीप्रकाश मिश्र का लेख - पृ. 36

"क्या मैं जाऊँ उस पार
जहाँ ओस भरे रसीले होठों को तरह आभा देती है
अकेले नीले फूल
अनिश्चित चिड़िया की तरह "[1]

उसी प्रकार शैली में एक प्रकार का प्रवाह निम्नस्त पंक्तियों में दर्शाते हैं-

"सच बतलाना
तुम ने इस घर का कोना कोना देख लिया
कुछ नहीं मिला
×× ××
यह सब का सब
बेहद नीरस, बेहद उदास
तुम सोच रही होगी आखिर
इस घर में क्या है ? जिसको कोई प्यार करे ?"[2]

साही को काव्य शैली की सपाटता नई एवं समकालीन कवियों की कविताओं की शैली को विस्तृत करनेवाली है ताकि साही भी समकालीन बन गये हैं । "संवाद तुम से" शीर्षक साही के संकलन की "हिमालय के आँसू" कविता का यह उदाहरण है ।

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 26
2. संवाद तुम से -विजयदेव नारायण साही - पृ. 83-84

"मत डरो -
मैं नहीं तुम्हें समझाऊँगा किस्से कहकर
मैं नहीं तुम्हारे प्यारे आँसु पोंछूँगा
मैं नहीं घटाऊँगा इस संकट का महत्त्व
मैं नहीं कहूँगा दर्द घूँट में पीने को" [1]

×× ×× ×× ××

"मैं केवल इतना कहता हूँ
इस सूने कमरे की सिसकने से क्या होगा ?" [2]

भाषा-शैली की इस सादगी पर कह गया है, "समकालीन कविता का भाषा-संसार एक स्वतंत्र अध्ययन की माँग करता है, उसका अपना शब्द-जगत है और उस में शब्द कहीं से भी उठाये, पाये जा सकते हैं ।" [3] क्योंकि समकालीन कविता अपने पाठक को श्रोता की तरह सामने उपस्थित पाती है और उस से सीधे बातचीत करना चाहती है । यह साही की कविता को और प्रासंगिक बनानेवाला पहलु है ।

बिंब योजना

हिन्दी कविता में शैलीगत परिवर्तन वस्तुत:

---

1. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 39
2. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 40
3. आलोचना- अंक-67 अक्तुबर-दिसंबर 1983 - सं. नामवरसिंह - पृ. 31

छायावादोत्तर युग की देन है । लेकिन यह परिवर्तन मात्र छन्द या अलंकार-विधान तक सीमित नहीं रहा । सभी काव्यांगों में परिवर्तन की दिशाएँ देख सकते हैं । बिंब वस्तुत: शब्द चित्र है । यह कवि के मानसिक संवेगों को पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करता है । काव्य बिंब संबंधी डा. नगेन्द्र का कथन यहाँ उद्धृत करना और भी प्रासंगिक लगता है, "बिंब का मूल विषय मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार का हो सकता है; अर्थात् पदार्थ का भी बिंब हो सकता है और गुण का भी । किन्तु उसका अपना रूप मूर्त ही होता है । अमूर्त बिंब नहीं होता जिन बिम्बों को अमूर्त माना जाता है वह अचाक्षुष होते हैं, अगोचर नहीं होते ।"[1]

आधुनिक कविता में बिंब-विधान बाहरी सजावट के रूप में नहीं बल्कि कवि-दृष्टि एवं कविता के संदर्भ में इसका प्रयोग हुआ है कि बिंब का अलग अस्तित्व ही नहीं रहता -

"सो रहा है गाँव
खेतियों की अनगिनत मेंड़ें
कि धरती के दुलारे वक्ष को
ऊँगलियों से पकड
बच्चों को सलोनी नींद में सुकुमार
सो रहा है गाँव ।"[2]

काव्य बिंब - डा. नगेन्द्र - पृ. 5

2. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही की कविता - पृ. 186

उपरोक्त पंक्तियों में कवि बिंबों के द्वारा गाँव का चित्रण करते हुए वहाँ की निश्चलता एवं अकर्मण्यता की ओर संकेत करते हैं । वस्तुतः गाँव का सोना दृश्य बिंब हो है । इसी प्रकार "साखी" शीर्षक संकलन में कई ऐसे बिंब हमें प्राप्त होते हैं जिनके द्वारा वस्तु-स्थिति का गहरा अवबोध प्राप्त होता है -

"दिये की टिमटिमाती रोशनी में
रोज़ इस मूर्ति में से
एक आदमकद आकृति प्रकट होती है
जो शायद रहनेवाली देवी होगी
और कर्कश आवाज़ में
इस आदमी से उसका सिर माँगती है"[1]

लेकिन उसकी कविता की पूरी मानसिकता से ऐसे बिंब इस ढंग से घुलमिल गये है कि अलग से उसे समझा जाना कठिन है । यह समकालीन कविता के शिल्प-क्रम में बिंब-योजना का एक तरीका है ।

"वहाँ भी
जहाँ चीड के खामोश वन हैं
और सान्त्वना देनेवाली हिम चोटियाँ हैं
जहाँ नदी का शोर नहीं पहुँचता

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 7।

वहाँ भी तुम्हें लगेगा
कि पीछा करनेवाले जानवर की तरह
कोई तुम्हारे पीछे आ रहा है।"[1]

यहाँ बिम्ब को अलग से पहचानना असंभव है । साही की कविताओं के बारे में आलोचक की राय यों अभिव्यक्त है -"इसलिए उनके पहले संग्रह "मछलीघर" की कविताओं में प्रकृति की ओर उन्मुख सजग और बेजोड आन्तरिक अनुभूतियों की अनोखी अभिव्यक्ति हुई, विषादपूर्ण बिंबों के माध्यम से । परिणामस्वरूप वे एक ऐसे काव्य यथार्थ की सृष्टि करती है जो यथार्थ के परे के यथार्थ का यथार्थ होता है ।"[2] एक अर्थ में बिंब कवि के मानसिक संवेगों को पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करता है । मुक्तिबोध की "ब्रह्मराक्षस", नरेश मेहता की "संशय की एक रात", धर्मवीर भारती की "कनुप्रिया" और अज्ञेय की "असाध्य वीणा" मे भिन्न भिन्न प्रकार के बिंबों का प्रयोग किया गया है । साही ने भी अपने समय की कविता प्रस्तुत करते हुए विभिन्न प्रकार के बिंबों का प्रयोग किया है -

"जलते माथे पर सुने कुहरे की छाया
टूटती पसलियों में रोता, गूँजता दर्द
खाली जेबों में हाथ दिये, सामर्थ्यहीन
बिलकुल यों ही
सब कुछ खोकर
हम सभी उतरकर आये हैं इस घाटी में।"[3]

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 5
2. दस्तावेज़ - 51 - सं. विश्वनाथप्रसाद तिवारी - पृ. 36
3. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 42

यहाँ गरीबी की सूचना देनेवाला बिंब प्रस्तुत है । उसी प्रकार

"इस अकेले घर में
और इस घर को लपेटे हुए कुहरे में
मैं फिर कमरे के किवाड़ खोलकर
बाहर निकलता हूँ ।"[1]

कुहरे में लपेटे हुए घर, पेड़ सब माहौल की भयानकता बढ़ानेवाले बिंब-प्रयोग है । यों बिंब योजना साही की अधिकांश रचनाओं को सजग एवं बेजोड़ आन्तरिक अनुभूतियों की अनोखी अभिव्यक्ति बनाती है ।

प्रतीक-विधान

संकेत रूप से किसी भाव को व्यक्त करने को प्रतीक कहते हैं, इसमें चित्रांकन नहीं होता । यह नई कविता के शिल्प-पक्ष की और एक प्रमुख इकाई है, "प्रतीक वह दृश्य, प्रस्तुत तत्व है, जो अप्रस्तुत का प्रतिनिधित्व कर उसे अभिव्यक्त करता है ।"[2] प्रतीक योजना की नई नई रीतियों के कारण शिल्प की नवीनता बढ़ती ही नहीं बल्कि प्रतीक का नया अर्थ भी प्राप्त होता है जो नई कविता की उपलब्धि है । दिविक रमेश के शब्दों में, "वस्तुतः प्रतीक और

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 18
2. नई कविता - देवराज - पृ. 95

बिंब दोनों ही आधुनिक साहित्य की विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ हैं ।"[1] जैसे बिंब के संबंध में बताया है कि हिन्दी में प्रतीक का प्रचुर प्रयोग छायावादी युग की देन थी । लेकिन नई कविता में आकर उसकी व्यापकता बढ़ गई है । साही की अधिकांश कविताओं में प्रतीकों का समावेश हुआ है जो नए एवं सक्षम हैं । "मछलीघर" की पहली कविता "सामने आसपास पीछे" प्रतीकात्मक है -

"तुम उस से कतराकर
निकल नहीं सकेंगे
बार बार मुड़कर देखोगे
और कोई न कोई चकाचौंध सूरज
तुम्हें पीछा करता जान पड़ेगा"[2]

यहाँ चकाचौंध सूरज प्रतीक के रूप में आता है । जीवन के खुरदरे यथार्थ से पलायन करने को सोचनेवाले व्यक्ति के लिए चेतावनी है यह कविता । इसी प्रकार "दीवारें" शीर्षक कविता में आनेवाला वृषभ सूरज का प्रतीक है -

"लेकिन हर बार क्षितिज पर
वृद्ध वृषभ के आगे लाल पताका जैसी

---

1. नये कवियों के काव्य-शिल्प सिद्धान्त - दिविक रमेश - पृ. 2
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 5

धीरे धीरे फिर दीवारें उग आई है
नथुने फुला फुलाकर हम ने घर मारे"[1]

यह सही है कि "नये कवियों में प्रतीकों का माधुर्य है"[2] साही इसके लिए एक अपवाद कतई नहीं है । साही की "साखी" में कई प्रकार की प्रतीकात्मक रचनायें हैं । उनकी "मकान" शीर्षक कविता में मकान का गिरना किसी संस्कृति के विनाश या पतन की सूचना देनेवाली है -

"धीरे धीरे यह मकान गिर गया है
आज रात ऊपर से एक ईंट गिरी
खडखडाहट की ध्वनि
मुझे डरा गई"[3]

साही ने किसी सभ्यता या संस्कृति के प्रतीक के रूप में उपरोक्त पंक्तियों को अपनी कविता में शब्दबद्ध किया है जो प्रतीकात्मक प्रयोग के लिए उत्तम उदाहरण भी । उनकी "साखी" में संबोधन तथा काव्यपरक पहलुओं में व्याप्त व्यंग्य के बावजूद समसामयिक जीवन की मूल्यहीनता का प्रतीकवत् प्रस्तुतीकरण सहजता के साथ संभव हुआ है,

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 5
2. नई कविता - देवराज - पृ. 95
3. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 54

"काशी का जुलाहा कहता है
कालिदास भाई
अब मैं क्या करूँ ?"[1]

इस प्रतीकात्मक प्रयोगों के बावजूद उनकी कविता में कोई रूढ़िगत अव्यक्तता बिलकुल नहीं है -"साही का साहित्यिक और राजनैतिक लेखन एक ऐसा स्वतंत्र दिमाग की उपज है जिसमें रूढ़ियों के अंधेरे कमरे नहीं ।"[2] विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की यह टिप्पणी यहाँ साही के संदर्भ में सर्वथा समीचीन लगती है । साही के साहित्यिक लेखन की यही मानसिकता उनकी कविता के संबंध में भी प्रासंगिक है । फिर भी साही के शिल्प संबंधी यही प्रतिक्रिया प्रकट की गई है, "साही की कविताओं में नाटकीयता और भाषाई अलंकरण की किलाबन्दी नहीं है, कविताओं के पीछे उनकी बहुत ही हल्की छाप या अक्स का लहराता आभास भर रहता है जिसके ऊपर कविता लिखी हुई जान पड़ती है ।"[3] साही की राय में प्रतीकों का नवीन प्रयोग पुराने भावों एवं प्रतिमानों को बदलने के लिए अत्यन्त ज़रूरी है । यह भाषा को कई अर्थवत्ता एवं शिल्प को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए अवश्य सहायक रहा है ।

फैन्टसी-प्रयोग

आधुनिक कविता में फैन्टसी को एक प्रमुख स्थान प्राप्त है । क्योंकि वह वस्तुवादी यथार्थ का निषेध करनेवाली कविता है ।

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 139
2. दस्तावेज़ - सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - पृ. 7।
3. पूर्वग्रह-65 - सं. अशोक वाजपेई - कुंवर नारायण का लेख - पृ. 5।

अर्थात् तथ्यात्मक प्रतीति से बचने का प्रयास आधुनिक कविता में है । दर असल फान्टसी अभिधार्थ से भिन्न एक गहनतम अर्थद्योतन का शिल्पगत प्रयोग है । नई कविता में फैन्टसी का प्रमुख स्थान है ।

साही के पहले फैन्टसी का प्रयोग कवि मुक्तिबोध ने किया है । लेकिन इस दिशा में साही और मुक्तिबोध में भिन्नता है । मतलब मुक्तिबोध के फैन्टसी-प्रयोग में एक तरह की अन्तर्मुखता, निगूढता एवं दुरूहता है । लेकिन साही में यह नहीं । उनके द्वारा प्रयुक्त फैन्टसियाँ सपाट हैं । इस सिलसिले में डा. नामवर सिंह का कहना है -"लम्बी नाटकीय कविताओं का दूसरा वर्ग वह है जिसमें विजयदेव नारायण साही की "अलविदा" और मुक्तिबोध की "अन्धेरे में" शीर्षक कवितायें आती है । ये दोनों कवितायें भी नाटकीय एकालाप हो, किन्तु इन में फैन्टसी के सहारे एक ऐसी प्रभावशाली पटभूमि तैयार की गई है जो पूर्वोक्त कविताओं से इन्हें अलग कर देती है ।"[1] मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में फैन्टसियों को जोड़कर कविता का पूरा माहोल ही बदल दिया है । एक गहनतम एवं निगूढ वातावरण उत्पन्न करके उसका नाता उन्होंने अवास्तविक दुनिया से जोड़ने की कोशिश की । फैन्टसियों के द्वारा मुक्तिबोध ने जीवन की समस्याओं, आकाँक्षाओं वास्तविक स्थितियों तथा जीवन संघर्षों को रूपायित किया है । उनकी "ब्रह्मराक्षस" जैसी कविता इसके लिए उदाहरण है ।

---

1. कविता के नये प्रतिमान - नामवरसिंह - पृ. 156

मुक्तिबोध की कविताओं में मिलनेवाली फैन्टसियों से तुलना करते समय साही की कविताओं में उपलब्ध फैन्टसी अलग ढंग की है । उनकी फैन्टसी, जैसे सूचित किया है, सपाट है ; उसमें अन्तर्मुखता या निगूढ़ता नहीं । "साही समकालीन समस्याओं की तह तक जाने के लिए अक्सर फैन्टसी का सहारा लेते हैं ।"[1] यही सपाटता या "फ्लेननस" इसकी विशेषता है । साही की लंबी कविता "अलविदा" में यह विशेषता द्रष्टव्य है -

"एक बार खिडकी पर कैद
तुम ने और मै ने
सिर्फ चिन्तन की शहतीरें फेंककर
खुले आसमान तक
अदृश्य सुरंग बनाने की कोशिश की थी
जिसके भीतर हम चुपचाप फरार हो सके ।"[2]

फैन्टसी के लिए उद्धृत उपरोक्त कविता के कुछ प्रतीक एवं बिम्ब गहन होते हुए भी उतना क्लिष्ट नहीं । किन्तु अर्थद्योतन में यह गहन ही है । "अलविदा" में उन्होंने फैन्टसी के ज़रिए एक पटकथा का निर्माण किया है -

"मैं नहीं जानता कि मेरा चेहरा
तुम्हें किन सुनसान समुद्र तटों

---

1. समकालीन कविता का व्याकरण - परमानन्द श्रीवास्तव - पृ. 63
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 120

या अन्धेरी गुफाओं
या शान्त डरावने शिखरों की याद दिलाता है।[1]

साही का दूसरा संकलन "साखी" में भी फैन्टसियों का पर्याप्त प्रयोग है जो नई कविता से इसका सुदृढ संबंध दिखाता है । यद्यपि इस संग्रह तक आते आते साही का दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया, तदापि शिल्प के इन नव्य-प्रयोग में वे पीछे नहीं गये । प्रस्तुत संकलन की अधिकांश कविताओं में किस्सागोई शैली में प्रयुक्त फैन्टसियाँ अपनी सरलता के बावजूद समय की संकीर्णता और आदमी के असुरक्षाबोध की प्रताडना का वहन करते हुए अभिव्यक्त हो गई हैं,

"दिये की टिमटिमाती रोशनी में
रोज़ इस मूर्ति में से
एक आदमकद आकृति प्रकट होती है
जो शायद इस में रहनेवाली देखी होगी"[2]

कवि का अगला संकलन "संवाद तुम से" में भी फैन्टसी का ठीक प्रयोग नज़र आता है । "फैन्टसी का निर्माण एक इतर लोक का निर्माण होता है जिसमें रचनाकार इस लोक से निकलकर विचरना चाहते है ।"[3] इस इतर लोक से साही का फिक्र है ।

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 120
2. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 71
3. दस्तावेज़ - सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - श्रीप्रकाश मिश्र का लेख - पृ. 37

"टूटे चौरे पर तुलसी के सूखे काँटे
बेला की मटमैली डालें,
उस कोने में
अधगिरे घरौंदे पर गेरू से बने हुए
सहमी, शरारती आँखों से वे गोल-गोल सूरज चन्दा ।
सूखी अशोक की तीन पत्तियाँ ओरी पर
शायद इस घर में कभी किसी ने बन्दनवार लगायी थी ।"[1]

यों फैन्टसी-प्रयोग के द्वारा विभिन्न लोकों का सृजन करना काव्य शिल्प को और अधिक उद्दीप्त करने में सहायक हैं । संक्षेप में इन सारी रचनाओं में फैन्टसी अपनी सहज जटिलता को छोड़कर बिलकुल सरलता के साथ अभिव्यक्त हुई है और उसका स्वप्निल वातावरण एक गहनतम अनुभव बन गया है ।

नाटकीयता

समकालीन कविता संवाद की कविता है । यहाँ कवि कविता नहीं करता बल्कि आम आदमी से संवाद करता है । इसलिए नाटकीयता उसकी प्रमुख विशेषता बन गई है । वार्तालाप की शैली में कवि अपने अनुभव को बाँटता है । इस शैली की शुरूआत यद्यपि नई कविता में हुई थी तथापि उसका वाँछित विकास समकालीन

---

1. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ.83

कविता में ही हुआ है । समसामयिक जीवन वस्तुत: बहुत सारे परिवर्तनों का अखाडा है । इसका वास्तविक शिकार आम आदमी है । अत: कवि आम आदमी को अपने यथार्थ से अवगत कराने का महत्वपूर्ण कार्य बातचीत की शैली में करना चाहता है । क्योंकि वही सही तरीका है, "हिन्दी कविता में पिछले 20-25 वर्षों से जो विराट परिवर्तन हुआ उसके पीछे यह गहरा अनुभव है कि आज के विशाल जीवन-सागर के उतार-चढाव को, इसके प्रामाणिक अस्तित्व को बातचीत की लय के माध्यम से ही पकडा जा सकता है । इस लय की तलाश ही अभिव्यक्ति की तलाश है ।"[1] इस तलाश के अंतर्गत भाषा, शैली, बिंब, प्रतीक आदि सब कुछ आ जाते हैं जो काव्य-शिल्प के विभिन्न अंग हैं । साही के पहले दौर की रचना "तीसरा सप्तक" की कविताओं से यह शैली विद्यमान है -

"मत डरो
मैं नहीं तुम्हें समझाऊँगा किस से कहकर
मैं नहीं तुम्हारे प्यारे आँसू पोंछूँगा"[2]

"साखी" संकलन में भी इसके लिए काफी उदाहरण हैं -

"मैं नहीं भूल पाता सुवर्ण रेखा तुम को
न तुम्हारे प्रताप से उमडते हुए शोर को
न आँखों के सामने खींची हुई लाल लकीर को

---

1. कल्पना - जून 1964 - लेख - पृ. 13
2. संवाद तुम से - साही की कविता - पृ. 39

न सुनसान में निरन्तर गूँजती हुई प्रतिध्वनि को
न इस महाकाव्य अन्तराल को जरासन्ध की तरह
बीच से चीर कर निर्जीव फेंक देनेवाली
तुम्हारी अनिवार्य क्षमता को ।"[1]

अलावा इसके साही की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी नाटकीयता के लिए उदाहरण है - जो उनकी काव्य शैली संवाद की चरम स्थिति तक पहुँचाने में सहायक बन गयी है ।

"इधर आओ,
मैं तुम्हारी पुतलियों को देर तक देखूँ
यही है वह चिर-पराया व्योम । जिसमें खींचा
छूटे बाण सा हर दर्द उड़ता जा रहा है"[2]

नाटकीय शैली के "तुम" को आगे बढाते हुए साही ने बहुत सारी कविताओं को अपने विभिन्न संकलनों में पेश किया है

"मैं ने पूछा था तुम कहाँ हो
तुम ने कहा मैं इतिहास के बाहर चला गया हूँ ।"[3]

ये पंक्तियाँ "मछलीघर" शीर्षक संकलन की हैं । "साखी" संकलन से और एक उदाहरण देखिए :-

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 61
2. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 67
3. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही - पृ. 27

"आओ मैं खिडकी से तुम्हें
एक अद्भुत दृश्य दिखाऊँगा
रोशनी से बिंधे उस कमरे में
वही आदमी रहता है
जिसके होने की कल्पना तुम ने की थी"[1]

यहाँ मैं-तुम जैसे सर्वनामों का प्रयोग करते हुए कविता को बिलकुल वार्तालाप बनाया गया है या वह यों कहिए कि कविता वक्तव्य बन गयी है,

"मैं ने तुम्हें उठाया
मैं उनसे पूछना चाहता था
उन तमाम सवालों के उत्तर
जिन्हें मैं महाप्रस्थान के पहले"[2]

इस प्रकार अपनी कविताओं में नाटकीय संवाद शैली को स्वीकारते हुए साही ने अपने काव्य-शिल्प की नूतनता प्रस्तुत की है । "संवाद तुम से" की कविताओं को देखे तो हमारा ध्यान उनकी स्थापनाओं से बढ़कर उनके शिल्प पर जाता है और साफ लगता है कि उनकी कविताओं की विशिष्टता उनका रचाव है जो उन्हें अपने तमाम समकालीनों से अलग करती है और काव्यतत्व के गुण-गिराव के युग में एक स्वस्थ मानक प्रस्तुत करती है ।"[3] समकालीन कवि इस शैली के माध्यम से अपने

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. ।।
2. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही - पृ. 48
3. दस्तावेज़-5। अप्रैल-जून 1991 - सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - श्रीप्रकाश मिश्र का लेख - पृ. 36

पाठकों को गंभीर श्रोता बन लेता है । वह धीरे धीरे श्रोता के पद से ऊपर उठकर द्रष्टा बन जाता है । इस प्रकार रचनाकार ने जो कुछ अनुभव किया, जो कुछ देखा उसको अपने पाठकों को भी अनुभव कराने तथा दर्शाने का कार्य समकालीन कवियों की विशेषता है । समकालीन काव्य और पाठक के बीच का सरोकार यही है । अत: साही के नवीन शिल्प-क्रम में प्रस्तुत की गई समस्यायें मात्र कवि की या उसके परिवेश की न होकर बृहतर जन-समुदाय एवं परिवेश की बन जाती है । इस प्रकार साही का काव्य-शिल्प बहुआयामी है । वह आगामी कविता का पथप्रदर्शक है । वह हिन्दी कविता को नूतन काव्य-संकेतों से संपुष्ट करनेवाला ठहरता है ।

सातवाँ अध्याय
==========

साहो की आलोचना-दृष्टि

सातवाँ अध्याय

साही की आलोचना दृष्टि

आलोचना विशेष प्रकार से देखने, समझने और परखने की प्रक्रिया का नाम है । किसी रचना की विशेषताओं को प्रकाशित करना, उसकी उपलब्धियों एवं अभावों का मूल्यांकन करना, सहृदयों के अन्तर्मन की प्रतिक्रिया को विश्लेषित करना जैसे अनेक कार्य आलोचना के अंतर्गत आते हैं । याने वह कला और साहित्य के क्षेत्र में निर्णय का कार्य करती है । उसमें गुण-दोष विवेचन के सन्तुलित आधार को महत्व दिया गया है । इसलिए आलोचना केवल रचना का मूल्यांकन मात्र नहीं वह रचनाकार, उसके परिवेश और कृति को समग्रता में समझने की प्रक्रिया भी है । एक कुशल आलोचना में इतिहासबोध, गहरी रसज्ञता और सुलझी हुई साहित्य-दृष्टि की अपेक्षा होती है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना को साहित्यिक रूप प्रदान किया । उनकी आलोचना में व्याख्या की प्रधानता है उनकी समीक्षा मुख्य रूप से कवि की कृति ही रहती है । रचनाकार के समूचे परिवेश को अपनी आलोचना के विषय बनाने में आलोचक की प्रतिबद्धता है । अतः आचार्य शुक्लजी की समीक्षा-पद्धति का एक प्रभावशाली युग ही रहा है । आलोचकों की समझदारी के अंतर्गत मूल्यांकन भी आता है, "किसी भी आलोचक का दायित्व केवल मूल्यांकन करना नहीं, एक प्रकार की समझदारी विकसित करना भी है, जो किसी पाठक को बान्धे नहीं बल्कि उसके भावयन्त्र को परिचालित करें ।"[1]

---

1. आलोचक और समीक्षायें - डा. सत्यप्रकाश मिश्र - पृ. 33

आलोचना का संबंध, जैसे पहले सूचित किया गया है, मात्र रचना से नहीं बल्कि रचनाकार से भी है । लेकिन साहित्यकार स्वयं आलोचक बनने की रीति सब से पहले छायावादी युग में शुरू हुई थी । प्रसाद, पंत, निराला जैसे कवि आलोचक इसलिए हुए कि वे अपने काव्यादर्श को स्वयं स्पष्ट करते थे । छायावाद के बाद इस प्रक्रिया का विकसित रूप प्रयोगवाद में देखने को मिलता है । युग-जीवन को मूल्यांकित करने के सिलसिले में निराला युगान्तरकारी विद्रोही कवि साबित हो जाते हैं । इसलिए वे छायावादी सौंदर्य-जाल से मुक्त होकर जीवन की विशालता का कवि बन गये हैं । प्रगतिवादी कविता में कवि की सामाजिक मानसिकता का सही परिचय अपनी रचनाओं तथा आलोचनात्मक लेखों से मिलता है । प्रयोगवादी कविता के साथ अपना वक्तव्य भी प्रस्तुत किया था । अज्ञेय उनके अगुआ रहे । नई कविता में इसका क्षेत्र विस्तार होता है और प्राय: सारे कवि अपनी रचनाधर्मिता पर वक्तव्य प्रस्तुत करने लगे । इस संदर्भ में विजयदेव नारायण साही का स्थान विचारणीय बनता है । उन्होंने नई कविता से जुड़कर अपने आलोचक-व्यक्तित्व को विकसित करने का कार्य किया था । साही सही अर्थ में नई कविता का वक्ता, आधुनिक हिन्दी कविता का प्रवक्ता तथा साहित्यालोचना के अगुआ थे । वे ऐसे आलोचक थे जिन्होंने कवि, कृतिकार एवं परिवेश को समान हैसियत प्रदान की । इसलिए आलोचना के क्षेत्र में साही का स्थान निर्विवाद का है "नई समीक्षा-प्रणाली को विकसित करने में विजयदेव नारायण साही का अपने सहयोगी कवि-समीक्षकों को ज़्यादा योगदान है ।"[1] साही नई कविता के उन

---

1. समीक्षा के नये प्रतिमान - डा. अशोक द्विवेदी - पृ. 60

प्रवर्तकों में है जिन्होंने नई कविता को समझने और मूल्यांकन करने के लिए नए प्रतिमान की आवश्यकता महसूस की । "तीसरा सप्तक" में साही ने अपनी बीस कविताओं को प्रस्तुत करने के पहले कवि एवं कविता तथा व्यक्ति एवं समाज संबंधी अपना वक्तव्य पच्चीस शील के रूप में पेश किया है,

(1) मैं बहुत अक्लमन्द आदमी हूँ । मुझे जैसे और भी हैं । बहुत से ऐसे हैं जो न मुझ जैसे हैं, न मुझ जैसों जैसे हैं ।

(2) मैं परम स्वतंत्र हूँ । मेरे सिर पर कोई नहीं है । अर्थात् अपने किए के लिए मैं शत-प्रतिशत जिम्मेदार हूँ । अर्थात मेरे लिए नैतिक होना संभव है ।

(3) मैं संसार का सबसे महत्वपूर्ण प्राणी हूँ । यदि नहीं हूँ तो आत्महत्या के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है । यही दशा आप की भी है ।

(4) नितान्त अव्यावहारिक होना ईमानदारी और अक्लमन्दी का लक्षण है । समाज में सब तो नहीं पर काफी लोग ऐसे होने चाहिए जिस समाज में नितान्त अव्यावहारिक कोई नहीं रह जाता वह समाज रसातल को चला जाता है ।

(5) मैं अपने को बहुत नहीं सेटता, क्योंकि यह मेरा कर्तव्य नहीं है ।
लेकिन आप का कर्तव्य है कि मुझे सेटें ।
इसका प्रतिलोम भी सत्य है ।

(6) सर्वोत्तम वह है जिसमें व्यक्ति के केवल अधिकार हैं अधिकार है ।
कर्तव्य कोई नहीं । अर्थात् जो भी मैं
चाहूँ, वह मुझे मिल जाय, लेकिन जो मैं
देना न चाहूँ वह मुझे देना न पड़ें ।

(7) कविता के क्षेत्र में केवल एक आर्य सत्य है, दुख है । शेष तीन राजनीति
के भीतर आते हैं ।

(8) कविता को राजनीति में नहीं घुसना चाहिए क्योंकि इस से कविता
का तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, राजनीति के
अनिष्ट की संभावना है ।

(9) शैली महान क्रान्तिकारी कवि था । इसलिए उसको चाहता हूँ ;
लेकिन उसके नेतृत्व में क्रांतिकारी होना
नहीं चाहता । बाबा तुलसीदास महान
सन्त कवि थे, लेकिन वह संसद के चुनाव
में खड़े हो तो उन्हें वोट नहीं दूँगा ।
नीत्शे का "जरदुस्त उवाच" सामाजिक यथार्थ
की दृष्टि से जला देने लायक है । पर

कविता की दृष्टि से महान कृतियों में
से एक है । उसकी एक प्रति पास रखता
हूँ और आप से भी सिफारिश करता हूँ ।

§।0§ कवि अनिर्वाचित मन्त्रदाता हो सकता है । निर्वाचित मंत्री हो
जाने से कवि का हित और जनता का
अहित होने की आशंका है । दोनों ही
अवांछनीय संभावनाएँ हैं ।

§।।§ कविता से समाज का उद्धार नहीं हो सकता यदि सचमुच समाज का
उद्धार करना चाहते हैं तो देश का प्रधानमंत्री
बनने या बनाने की चेष्टा कीजिए । बाकी
सब लगो हैं ।

§।2§ मैं आलोचक से पूछता हूँ कि पहले यह सिद्ध कीजिए कि समाज का
नागरिक होने के नाते कविता लिखना
भी मेरा कर्तव्य है ।

§।3§ कवि अ-कवियों से अधिक संवेदनशील या अनुभूतिशील नहीं होता ।
जो कवि इसके विपरीत कहते हैं उनका
विश्वास मत कीजिए ।

§।4§ कविता का विषय वह होता है जो अब तक की भोगने की प्रणाली में नहीं बैठ पाता है ।

§।5§ अपनी विशिष्ट अनुभूति और अब तक उपलब्ध परिभाषा में असामंजस्य §न देखना§ अ-कवि का सौभाग्य है ।

§।6§ कवि अभागा है । वह विशिष्ट अनुभूति को बदल नहीं पाता । तब तक बेचैन रहता है जब तक परिभाषा को बदल नहीं लेता । असामंजस्य देखने का काम बुद्धि करती है । परिभाषा बदलने का काम कल्पना करती है ।

§।7§ कवि की अमरता गलतफहमी पर निर्भर करती है । जिस कवि में गलत समझे जाने का जितना अधिक सामर्थ्य होता है वह उतना ही दीर्घ जीवि होता है ।

§।8§ सार्थकता बराबर तप नहीं, शब्दाडंबर बराबर पाप ।

§।9§ §पिता का बाबा के कहे को कहना परंपरा है, मेरा कहना प्रयोग§ यदि मैं कुछ नहीं कह पाता तो न परंपरा है न प्रयोग ।

§20§ पश्चिम से छुटना असंभव दीखता है ।.... केवल भौतिकवाद में निस्तार है यह भी पश्चिम ने कहा है, लेकिन नया है ।

§21§ कविता राग है । राग माया है । माया और अध्यात्म में वैर है अत: आध्यात्मिक कविता असंभव है । जो इस में दुविधा करते हैं उन्हें न माया मिलती है न राम । जैसे हाल छायावादियों का हुआ । इस से शिक्षा लेनी चाहिए ।

§22§ अंग्रेज़ों ने अक्लमन्द बनाया लेकिन गूँगा करके छोडा । गांधीजी ने आवाज़ तो दी लेकिन अक्ल बंधक रखवा ली । बडा क्रोध आता है ।

§23§ "मा शुच:" का पाठ..... हमारी आकांक्षा को विराट और विवेक को बौना बनाकर चला गया ।

§24§ पचास से ऊपर वय हो जाना अपने आप में अक्लमन्दी का प्रमाण नहीं है । प्रमाण पत्र मैं दूँगा ।

§25§ अवज्ञा परमो धर्म: ।[1]

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही का वक्तव्य §भूमिका§ - पृ. 174

ये शोध साही की अपनी स्पष्ट एवं सुदृढ मान्यता के उदाहरण हैं । हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में साही के लेख "लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस" तथा "जायसी" नामक ग्रन्थ में कवि की यह मान्यता स्पष्ट हो उठती है ।

लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस

अज्ञेय और साही के संयुक्त-संपादन के फलस्वरूप 1954 में "नई कविता" नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ । इसने हिन्दी आलोचना को एक नई दिशा दी । इस पत्रिका में विजयदेव नारायण साही का लंबा लेख "लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस" प्रकाशित हुआ । यह लेख साही के आलोचक-व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करनेवाला पहला एवं प्रबल कदम है । इस लेख में लघुमानव एवं महामानव की चर्चा पहली बार साही के द्वारा हुई है जो नई कविता का केन्द्र बिन्दु रहा है । अतः साही की आलोचना-पद्धति पर विचार करना एक अर्थ में नई कविता पर बहसना ही है । "नई कविता की ज़मीन ही ऐसी है कि परंपरा के संदर्भ में "नकार" पहले और "स्वीकार" बाद में आता है ।"[1] क्योंकि यह सही है कि नई कविता परंपरा से बहुत कुछ का अस्वीकार तथा बहुत कम का स्वीकार करनेवाली कविता है । अतः साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भी साही की आलोचना सर्वाधिक महत्व रखनेवाली है ।

---

1. पूर्व ग्रह-65 - नवंबर-दिसंबर 1984 - सं. अशोक वाजपेई - पृ. 93

लघुमानव

नई कविता की चर्चा के साथ ही हिन्दी कविता में लघुमानव की चर्चा होने लगी थी । मानव का वर्गीकरण संबंधी कई मान्यतायें हैं । नीत्शे के अतिमानव के विरोध में या उस से प्रेरित होकर श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लघुमानव की कल्पना की है । उन्होंने अपने लेख "मानव-विशिष्टता और आत्मविश्वास के आधार में "सुपरमैन" के संदर्भ में लघुमानव की चर्चा भी की है । दूसरे लेख "मानव मूल्यों के संदर्भ"में वे अरविन्द दर्शन के महामानव के विरोध में भी लघुमानव को ही स्थापना करना चाहते है । शशि सेहगल के शब्दों में, "लघुमानव एक संज्ञा है जिसे समस्त व्यापक मानवात्मा का लघुतम आत्मबोध कहा जा सकता है ।"[1] तात्पर्य यह है कि साहित्य में आम आदमी की प्रतिष्ठा जब हुई तब से लघुमानव की चर्चा ज़ोर पकड़ने लगी । विजयदेव नारायण साही ने लघुमानव संबंधी नई मानसिकता को परिभाषित करने का स्तुत्य कार्य "लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस" नामक निबन्ध में किया है । यहाँ लघुमानव से तात्पर्य आम आदमी से है । इसी मानसिकता को अज्ञेय ने दूसरे ढंग से यों व्यक्त किया है, "एक विशिष्ट अर्थ में यह कहे कि मनुष्य ही साहित्य का परिवेश है तो एक विशिष्ट साहित्य को ही ध्यान में रख रहे होंगे जिसे सामान्यत: आधुनिक साहित्य कहा जाता है ।"[2] यहाँ मनुष्य से तात्पर्य लघुमानव या साधारण मानव से है । इस लघुमानव को जगदीश गुप्त ने नया मानव कहते हुए अपना मन्तव्य यों प्रकट किया है, "नये मनुष्य की बात करना यथार्थ से भागना

---

1. नई कविता में मुक्तिबोध - शशि सहगल - पृ. 55
2. साहित्य का परिवेश - सच्चिदानन्द वात्स्यायन - पृ. 72

नहीं क्योंकि विविध समस्याओं की चिन्ता करना आज के विश्वव्यापी नैतिक संकट का स्वाभाविक परिणाम है ।"[1] साही की राय में आम आलोचक जहाँ विशेष से शुरू करता है वहाँ साही "सामान्य" से । अपने लेख में साही द्वारा उठाए गए मुद्दे आज भी विचारणीय है । नई कविता का मुख्य एवं मार्मिक बिन्दु आम आदमी होने के कारण नई कविता के क्षेत्र में साही का योगदान बहुमूल्य है । लघुमानव और महामानव की चर्चा करते हुए कविता में लघुमानव की प्रतिष्ठा करने में साही सफल निकले हैं । साही के आलोचक-व्यक्तित्व का एक पहलु भी यही है । लघुमानव को उसकी कमज़ोरियों एवं महत्ताओं के साथ प्रयोगवादी कविता ने जो सहानुभूति दिखाई थी उसका सही बोध साही को था, "आदमी अपनी सारी कमज़ोरियों, हीनताओं, लघुताओं और महत्ताओं के बीच यथार्थ है । अत: यथार्थ मानव की सृष्टि के लिए उसके जटिल परिवेश को अंकित करना कलाकार का धर्म है ।"[2] साही में प्रस्तुत लघुताबोध का स्पष्ट विस्तार हम देख सकते हैं । नई कविता का लघुमानव आधुनिक जीवन का भोक्ता है । इस भोक्ता का पक्षधर कवि है साही । अत: साही ने लघुमानव के विसंगत परिवेश एवं यथार्थ को अपनी कविता का केन्द्र बनाया था । अभिजात-वर्गीय काव्य-संवेदना को तिलांजली देते हुए निम्नवर्गीय जीवन-यथार्थ की संवेदना को संप्रेषित करने में साही के साहित्य की भूमिका विशेष उल्लेखनीय रही है । नई कविता के हर मुद्दे और प्रतिमान पर वाद-विवाद उठाना, खुलकर बहसना, गरजना, संवाद करना और सोचना साही का ही काम था ।

---

1. कवितान्तर - सं. जगदीश गुप्त - पृ. 39
2. आलोचना की नई तलाश - राघव प्रकाश - पृ. 330

इसलिए छायावाद और छायावादोत्तर काव्य शास्त्र का पूरा परिदृश्य उनके बिना न केवल अधूरा है बल्कि बंजर दिखाई देता है । साही के निजी शब्दों में, "आलोचना ही रचना का दर्शन-शास्त्र है, जिसमें रचना की तात्त्विकता, मौलिकता, अर्थवत्ता का मूल्यांकन किया जाता है ।"[1]

महामानव

महामानव लघुमानव से भिन्न है । उसका आम आदमी से कोई संबंध नहीं । महामानव समाज के अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो नीत्शे के अतिमानव या सुपरमैन की परिकल्पना से संबद्ध है, जो सदा लघुमानव से संघर्षरत है ।

साही अपने चर्चित लेख "लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस" में साम्राज्यवादी यूरोप के साहित्य में व्याप्त अपराध-भावना का उल्लेख करते हुए इस तथ्य पर ज़ोर देते हैं कि हमारे साहित्य में उस तरह की अपराध-भावना नहीं है । उन्होंने लघुमानव को प्रतिष्ठित करने के लिए सुपरमैन का उल्लेख मात्र किया है ।

---

1. दस्तावेज़-65 - अक्तूबर-दिसंबर 94 - सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - पृ. 10

व्यक्ति संबंधी विचार

"तीसरा सप्तक" की भूमिका में साही ने व्यक्ति तथा समाज संबंधी अपना विचार प्रस्तुत किया है । साही का व्यक्ति-चिन्तन समाज सापेक्ष्य है । अज्ञेय की व्यक्तिवादिता से साही का व्यक्ति-चिन्तन इस दृष्टि से थोडा भिन्न भी है । अज्ञेय समाज को इस संदर्भ में स्वीकार करते हैं कि वह व्यक्ति को आकार देता है । अज्ञेय यहाँ द्रष्टा है पर साही भोक्ता है । एक व्यक्ति होने के नाते साही यहाँ की बुराइयों, अत्याचारों एवं विषमताओं के खिलाफ आवाज़ उठाते हैं । वे व्यक्ति और परिवेश को समान महत्व भी देते हैं । क्योंकि परिवेश के अंतर्गत मानव समाज का समग्र कृतित्व और भौतिक जगत शामिल है । दोनों मिलकर ही "मनोभूमि" का भाव बनता है । साही की आलोचना में इन दोनों की टकराहट से उत्पन्न एक भिन्न प्रकार के विधान का आविष्कार मिलता है । क्योंकि, "परिवेश को बदलने के क्रम में मनुष्य स्वयं बदलता है और इस प्रक्रिया में उसे यह दृष्टि भी मिलती है कि वह अपने परिवेश को अपने अनुकूल बदल सकता है ।"[1] इसलिए साही के लेख, कविता, भाषण, राजनीति सब का विषय मनुष्य है और इन्हीं में व्यक्ति संबंधी अपनी मान्यता विवृत होती है । वहाँ भी शुभ और अशुभ दोनों से युक्त मनुष्य को वे केन्द्र में रखते हैं । क्योंकि हितों-अहितों को नकारना साही के लिए संभव नहीं था । ये दोनों साहित्य के लिए अनिवार्य हैं ।

---

1. आलोचक और समीक्षायें - डा. सत्यप्रकाश मिश्र - पृ. 33

आलोचना में आलोचक रचना के साथ रचनाकार या व्यक्ति, समाज और उसके परिवेश पर समान रूप से ध्यान देते हैं । इन सब के संबंध में अपनी अलग मान्यता भी रखते हैं । डा.लोहिया के मतानुसार "गाँधीजी में व्यक्ति पर अधिक और परिवेश पर कम बल देने की प्रवृत्ति है ।"[1] लेकिन समाजवाद में परिवेश को अधिक एवं व्यक्ति को कम महत्व देने की प्रवृत्ति है । यहाँ साही व्यक्ति और परिवेश दोनों को समान महत्व देने की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए आगे बढे । नई कविता व्यक्ति-सापेक्ष कविता तो है पर समाज-विमुख नहीं । साही की व्यक्ति-संबंधी मान्यता समाज को अनदेखा करते हुए नहीं । कविता संबंधी आत्म-वक्तव्य प्रस्तुत करते हुए साही ने व्यक्ति तथा समाज संबंधी और उन दोनों के आपसी सरोकार संबंधी अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है । उनका कथन है, "मैं संसार का सब से महत्वपूर्ण प्राणी हूँ । यदि नहीं हूँ तो आत्महत्या के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं । यही दशा आप की भी है ।"[2] यहाँ साही समाज में व्यक्ति की सत्ता को अद्वितीयता पर ज़ोर देते हुए उसकी महिमा को रेखांकित करते हैं । समाज में वे ऐसे व्यक्ति को चाहते हैं जो सचेत एवं जागरूक हो ।

समाज संबंधी दृष्टि

साही की आलोचना-दृष्टि में व्यक्ति के साथ समाज

---

1. मार्क्स, गाँधी एन्ड सोशियलीसम - डॉ.लोहिया - पृ. 137
2. तीसरा सप्तक - सं.अज्ञेय - साही का वक्तव्य - पृ.175

को भी अपना अलग स्थान है । उपरोक्त व्यक्तिवादी चिन्तन के अनुरूप ही उन्होंने अपनी समाज संबंधी परिकल्पना भी की है । समाज संबंधी साही की दृष्टि काफी विरोधाभासजनक है क्योंकि यहाँ ऐसा कोई समाज नहीं है जहाँ व्यक्ति के लिए कोई कर्तव्य न हो तथा केवल अधिकार ही अधिकार हो । लेकिन साही की दृष्टि में समाज ऐसा होना चाहिए जहाँ व्यक्ति को केवल अधिकार ही अधिकार हो, "सर्वोत्तम समाज वह है जिसमें व्यक्ति को केवल अधिकार ही अधिकार हो, कर्तव्य कोई नहीं.....।"[1] सामाजिक प्राणी बनकर जीने योग्य बनने के तुरन्त बाद ऐसे कई अधिकार और कई कर्तव्य भी निर्धारित किए गए है । लेकिन साही का दृष्टिकोण आज के समाज की संकटापन्न स्थिति से संबंधित है जिनमें व्यक्ति-जीवन कई प्रकार की असंगतियों से गुज़र रहा है । यों व्यक्ति के जीवन में आयी हुई विघटनात्मक स्थिति से प्रेरित होकर साही ने अपने समाज संबंधी उत्तेजक विचार प्रस्तुत किया है ।

साही की आलोचना-दृष्टि

आलोचना संबंधी साही की स्पष्ट मान्यता रही है चाहे वह साहित्य के प्रति या जीवन के प्रति । आलोचना उनकी दृष्टि में कोई जबरदस्त काम नहीं है । साहित्यालोचना, साही की दृष्टि में, कृति की संवेदना को ज़बरदस्ती खींचकर पाठक तक पहुँचाना नहीं बल्कि,

---

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय - साही का वक्तव्य - पृ. 175

"आलोचना सिर्फ इतना कर सकती है कि पाठक के जो भी वैचारिक या धारणात्मक, पूर्वग्रह, जाने या अनजाने, अपनी उपस्थिति या अनुपस्थिति के कारण पाठक को उस ओर उन्मुख होने से रोक रहे है जहाँ से काव्य का "प्रभाव" प्रवाहित हो रहा है, उन्हें विनष्ट करके पाठक को एक उचित तत्परता की अवस्था में छोड़ दे ।"[1] आलोचना एक अर्थ में साहित्य का दर्शनशास्त्र है । वह संवाद से ज़्यादा आज तर्क पर केन्द्रित है । साही की आलोचना संश्लिष्ट उत्तर का विश्लेषण करके उसकी सीमा-रेखा को सुस्पष्ट बनाने में सहायक है । अतः साही ने कवि के समान आलोचक के रूप में भी अपनी प्रतिष्ठा पायी है ।

"जायसी"

"लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस" शीर्षक लम्बे आलोचनात्मक लेख के प्रकाशन के उपरान्त साही के आलोचना-व्यक्तित्व की दूसरी कसौटी के रूप में उनकी एक अलग रचना "जायसी" नामक कृति है । इस आलोचनात्मक कृति का प्रकाशन उनके निधन के बाद 1983 में हुआ । यह मध्यकालीन कवि का आधुनिक कवि के रूप में मूल्यांकन है । भक्तिकाल के सूफी कवि जायसी का पुनर्मूल्यांकन इस में किया गया है । वास्तव में "जायसी" नामक यह रचना साही के आलोचक-व्यक्तित्व का दूसरा सुस्पष्ट एवं सुदृढ कदम है ।

---

1. छठवाँ दशक - विजयदेव नारायण साही - पृ. 60

रचना का उद्देश्य

"जायसी" नामक साही की आलोचनात्मक रचना का उद्देश्य मध्यकालीन सूफी कवि जायसी का पुनर्मूल्यांकन है । इसमें मध्यकालीन सूफी कवि जायसी को नए दृष्टिकोण के तहत पर आधुनिक संदर्भ में आँकने का कार्य किया गया है । सब से पहले आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी को बोसवीं शताब्दी के सब से प्रासंगिक कवि के रूप में चित्रित किया था । उन्होंने ही पहली बार जायसी में निहित सर्जनात्मक उद्वेग-संपन्न कवि-प्रतिभा को पहचान लिया है । लेकिन सूफी सांप्रदायिक चिन्तन के ढाँचे को तोड़ने का प्रयास उन्होंने नहीं किया था । पर साही ने शुक्लजी की मानसिकता को और स्पष्ट करने का कार्य किया । उन्होंने जायसी को एक अद्वितीय आधुनिक दृष्टि एवं मानवीयता से संपन्न कवि के रूप में प्रस्तुत किया । "जायसी के मूल्यांकन को आधार माना जाय तो विजयदेव नारायण साही शुक्लजी को आलोचना को आगे बढानेवाले आलोचक हैं और "पद्मावत" के संबंध में उनकी दृष्टि शुक्लजी से भिन्न है ।"[1] साही ने सूफी मतवाद का कोई सीधा दबाव जायसी पर स्वीकार ही नहीं किया । उनके मूल्यांकन में जायसी सन्त नहीं बल्कि कवि है और एक महत्वपूर्ण अर्थ में हिन्दी का पहला विधिवत् कवि ।

क्योंकि साही की दृष्टि में जायसी का व्यक्तित्व और स्वभाव एक बौद्धिक ढंग का है याने वह सूफी सन्त का नहीं है ।

---

1. पूर्वग्रह - अंक-65 - नवंबर-दिसंबर 1984 - सं. अशोक वाजपेई - परमानन्द श्रीवास्तव का लेख - पृ. 106

"पद्मावत्" को अपनी मूल प्रकृति में महत्वपूर्ण त्रासदी बताते हुए साही की टिप्पणी है -"शायद हिन्दुस्तान या संभवत: एशिया की धरती पर लिखा हुआ यह एकमात्र ग्रन्थ है जो यूनानियों की ट्राजडी के काफी निकट है ।"[1] इस ट्राजडी के मूल में वह मानवीय अनुभूति या उस अनुभूति की विकलता है जिसके निकट समस्त आध्यात्मिक दर्शन अप्रासंगिक हो उठता है । जायसी के विश्लेषण में साही की विशिष्टता यह है कि वह इस काव्य-गुण या कवि-दृष्टि को समकालीन के परिप्रेक्ष्य में रखकर देख सके हैं । इस कारण साही की रचना "जायसी" मध्यकालीन कवि-प्रतिभा के मूल्यांकन पर केन्द्रित होने के बावजूद नई आलोचना जैसा रचनात्मक स्वाद देने में कामयाब बन गई है । अत: साही के आलोचना-व्यक्तित्व को कसने की एक प्रमुख कसौटी उनकी रचना "जायसी" ही है इसमें कोई शक नहीं । स्वयं साही के शब्दों में "अगर हम जायसी के व्यक्तित्व को एक सामान्य मनुष्य, अत्यन्त प्रतिभावान कवि और दिल मिलानेवाले दोस्त की तरह ही देखें तो शायद जायसी के अपने बारे में दिए हुए संकेतों को ज़्यादा ठीक समझ पायेंगे ।"[2]

साही ने कबीर की तुलना में जायसी को सृजनात्मक कवि-प्रतिभा को अधिक महत्वपूर्ण बताया है । फिर भी कबीर के प्रति उनका आकर्षण कम नहीं रहा, इसलिए उनके कविता-संग्रह का नाम

---

1. जायसी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 19
2. जायसी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 17

"साखी" इसका परिणाम है । "प्रार्थना: गुरु कबीरदास के लिए" कविता की ये पंक्तियाँ इसी आकर्षणता का साक्ष्य है -

"दो तो ऐसी निरीहता दो
कि इस दहाडते आतंक के बीच
फटकार कर सच बोल सकूँ
और इसकी चिन्ता न हो,
कि इस बहुमुखी युद्ध में
मेरे सच का इस्तेमाल
कौन अपने पक्ष में करेगा ।"[1]

फिर भी जायसी को बडा कवि प्रमाणित करने के लिए उनके पास अनेक तर्क हैं । साही ने "जायसी" में जायसी के व्यक्तित्व और अंतरंग स्रोत की नई खोज की है जिसका आधार प्राय: जायसी का अन्त:साक्ष्य है पर अनुमान एवं तर्क-विश्लेषण साही का अपना है । साही की दृष्टि में जायसी का व्यक्तित्व और स्वभाव एक बौद्धिक कवि के ढंग का है ।

साही "जायसी" के पाठकों को सतर्क करते हैं कि गूढार्थ के सहारे जायसी का काव्य-मर्म की खोज संभव नहीं । "पद्मावत"

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 148

की कहानी के अनेक संदर्भों को जाँचने के उपरान्त साही यह नहीं मानते कि जायसी की उपलब्धि परंपरा या रूढ़ि, लोकमानस का काव्यशास्त्र, दर्शन योग, संस्कृत फारसी जैसे विविध उपादानों का उपयोग मात्र है । बल्कि जायसी की सार्थकता यह है कि वे इन विविध उपादानों को अपनी भावनात्मक भट्टी में गलाकर एक कर सके । "पद्मावत" को शुक्लजी ने प्रेमाख्यान के आदर्शस्वरूप के रूप में देखा था बल्कि साही की दृष्टि में वह केवल प्रेम की कहानी नहीं है ; प्रेम और युद्ध की मिली-जुली कहानी है । साही उसके समूचे परिदृश्य को बिलकुल नई दृष्टि से देखते हैं जहाँ इतिहास-दृष्टि से ज़्यादा कवि-दृष्टि की प्रमुखता है । यही साही के दृष्टिकोण का नयापन है ।

व्यक्तित्व-विश्लेषण

साही ने जायसी के व्यक्तित्व और अन्तरंगता की नयी खोज की । जायसी का व्यक्तित्व साही के लिए गालिब के व्यक्तित्व के समान लगा, "जायसी के काव्य से गुज़रते हुए साही को गालिब याद आते हैं - गालिब के दावे, गालिब का आत्म-कथन, आत्म-पीडा के स्थान पर आत्मान्वेषण जो एक ट्राजिक विषाद में घुलकर नया अर्थ प्राप्त करता है ।"[1] साही ने जायसी की सृजनात्मक प्रतिभा को अधिक महत्वपूर्ण बताया है । वे उनकी राय में सूफी संत नहीं, बल्कि एक बौद्धिक कवि हैं । इसके अलावा जायसी साही की

---

1. पूर्वग्रह-65 - सं. अशोक वाजपेई - परमानन्द श्रीवास्तव का लेख - पृ. 106-107

दृष्टि में विचारक है । कवि जायसी पर किये गये अनुसन्धान के फलस्वरूप साही का निष्कर्ष यह है कि जायसी विश्व दृष्टि एवं ट्राजिक विज़न से ओत प्रोत नया विवेक रखनेवाला कवि है । इसलिए साही की आलोचनात्मक कृति "जायसी" में मध्यकालीन प्रेममार्गी कवि जायसी का स्वरूप नहीं उभरता बल्कि क्रान्तदर्शी मानव प्रेमी तथा जीवन के यथार्थ का अनावरण करनेवाले एक चिन्तक-कवि का स्वरूप स्पष्ट हो उठता है ।

कृतित्व-विश्लेषण

जायसी का पुनर्मूल्यांकन करते समय आलोचक साही ने कवि जायसी कृत पद्मावत का भी विश्लेषण अपनी नवीन शैली में किया है । मध्यकालीन भारतीय संस्कृति में धार्मिक संवेदना और धर्म-निरपेक्षता के संबंधों की पड़ताल करते हुए, मध्यकालीन सांस्कृतिक इतिहास को थाह लेते हुए साही ने "पद्मावत" का मूल्यांकन इतिहास-रस के साथ किया है । शुक्लजी ने इस रचना के पूर्वार्द्ध की व्याख्या कल्पना-लोक के रूप में की और उत्तरार्ध को ऐतिहासिकता का एक अलग संसार माना और फिर दोनों में तालमेल बिठाने के लिए रूपक धर्म का सहारा लिया और अन्योक्ति-समासोक्ति के उलझन का हल ढूँढा । साही ने जायसी पर सूफी मतवाद की कोई सीमा-रेखा स्वीकार नहीं की । उनकी नवीन दृष्टि में जायसी मूलतः कवि है । हिन्दी का पहला विधिवत कवि । जायसी की अमर रचना "पद्मावत" में प्रेम है, युद्ध है, खलनायक है -

ताकि वह प्रेम और युद्ध की मिली-जुली कहानी है, यद्यपि शुक्लजी ने उसे प्रेमाख्यान काव्य कहा है, "पद्मावत" में उन्हें एक ऐसी काव्यकृति की संभावना दिखाई देती है जिसने संभवत: इतिहास को जन्म दिया। साही को यह स्थिति विचारणीय लगती है कि "पद्मावत" की उत्तरकथा में इतिहास का शिकंजा न नियामक है न बाधक।"[1] साही इस समूचे परिदृश्य को बिलकुल नई दृष्टि से देखते हैं जहाँ इतिहास से ज़्यादा काव्यात्मकता को स्थान है। उसी प्रकार इस रचना को सूफी ग्रन्थ और इतिहास-ग्रन्थ जैसे व्यतिरेकों को निरन्तर काट करते हुए साही "पद्मावत" को एक सुगठित तथा एकतान संरचना का काव्य प्रमाणित करना चाहते हैं। "सही अर्थ में "जायसी" अपने ट्राजिक विज़न अथवा विषाद-दृष्टि में अकेले हैं, उनका कोई पूर्ववर्ती है न परवर्ती।"[2] साही जायसी को असीमित रहस्यवादी तो नहीं बताते न असीमित प्रत्यक्षवादी - पर दोनों के द्वन्द्व में दीप्त जायसी की आन्तरिकता को पहचानने और नाम देने के लिए उत्सुक ज़रूर दिखाई पड़ते हैं। अन्तत: साही एवं उनकी कृति "जायसी" को अपने पुनर्मूल्यांकन एवं नई आलोचना में कालजयी बनाते हैं। जायसी समकालीन संदर्भ में भी बिलकुल प्रासंगिक निकलता है। साही की यह रचना "जायसी" मध्यकालीन कवि-प्रतिभा के मूल्यांकन पर केन्द्रित होने के बावजूद नई आलोचना-दृष्टि एवं नई संवेदना का परिचायक भी ठहरती है। साही की रचना "जायसी" से गुज़रना एक महत्वपूर्ण रचनात्मक अनुभव से गुज़रना है जो एक नई अनुभूति बन जाती है। क्योंकि साही के ही शब्दों में,

---

1. पूर्वग्रह-65 - सं. अशोक वाजपेई - पृ. 108
2. जायसी - विजयदेव नारायण साही - पृ. 109

"आलोचना के लिए, चाहे वह मूल्यांकन हो या पुनर्मूल्यांकन, सीधे सुथरे गिनाये जाने लायक प्रतिमान बहुत काम के नहीं होते । सब से अधिक आकर्षक आलोचना तो वही होती है जो एक साथ बहुत से पहलुओं को उजागर करती चलती रहती है और पाठक को मूल कृति या कृतियों के बारे में एक विशिष्ट उन्मुख अवस्था में छोड देती है । अच्छी आलोचना इस उन्मुख अवस्था को धारदार विशिष्टता प्रदान कर देती है जो कभी-कभी प्रतिमान जैसी लग सकती है ।"[1] नि:सन्देह साही की यह आलोचना-दृष्टि उन्हें समकालीन कवि-आलोचक का पद प्रदान करने में सफल निकलती है ।

संक्षेप में "लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस" शीर्षक लेख में लघुमानव की प्रतिष्ठा के कारण आधुनिक हिन्दी काव्यालोचना के क्षेत्र में तथा "जायसी" शीर्षक आलोचनात्मक कृति में जायसी के पुन:मूल्यांकन के कारण हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में साही का स्थान असंदिग्ध रह जाता है ।

---

1. साहित्य क्यों - विजयदेव नारायण साही - पृ. 27

उपसंहार

उपसंहार

विजयदेव नारायण साही के साहित्य के समग्र विश्लेषण के उपरान्त हम कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर पहुँच जाते हैं । वे निष्कर्ष उनके व्यक्तित्व तथा साहित्यिक साधना की विशेषताओं पर निर्भर रहते हैं । साही एक ऐसा व्यक्ति है जिन्होंने ज़िन्दगी भर संघर्ष के रास्ते को अपना लिया था । उनके संघर्ष का बहुआयामी स्तर है । एक ओर वे अपने व्यक्तित्व के लिए संघर्षरत थे । वे समझौतावादी नहीं थे । उन्हें सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन संबंधी सुदृढ एवं सुस्पष्ट विचार थे । उनका विचार है कि व्यक्ति के रूप में उन्हें बिलकुल स्वतंत्र रहना चाहिए । लेकिन एक नागरिक के रूप में समाज के प्रति उसका कुछ दायित्व अवश्य है उसको निभाना ही है । एक साहित्यकार के रूप में उनका कहना है कि उसको समाज के प्रति कोई दायित्व नहीं । क्योंकि साहित्य समाज-सुधार का माध्यम नहीं । साहित्य एक पवित्र धर्म है जिसका संबंध जीवन के विशिष्ट संदर्भों, अनुभवों एवं क्षणों से हैं । इसलिए साहित्य-रचना कोई दायित्व नहीं बल्कि कलाकार की अनिवार्यता का परिणाम है । इस प्रकार व्यक्ति, राजनीतिक कार्यकर्ता एवं साहित्यिक के रूप में साही हमेशा ऊबड खाबड राहों के यात्री थे । याने कि सही अर्थ में साही विद्रोही थे । जैसेकि काम्यु ने सूचित किया कि जब तक मैं विद्रोह करता हूँ तब तक मेरा अस्तित्व है । इस अर्थ में साही भी ज़िन्दगी भर Rebellion याने विद्रोही थे ।

नई कविता के क्षेत्र में साही का योगदान चिरस्मरणीय है । साहित्य-जगत में लघुमानव की प्रतिष्ठा को अनिदार्यता एवं प्रासंगिकता की उद्घोषणा करते हुए साही ने हलचल मचाया । यद्यपि राष्ट्र-निर्माण में समाज के कामगर वर्ग को अनिवार्य भूमिका को निराला ने पहले ही पहचान लिया था तदापि साही ने इस दृष्टिकोण पर अधिक ज़ोर दिया । समाज के श्रमिक वर्ग के मित्र थे साही । साहित्य जगत् में ही नहीं सामाजिक संदर्भ में भी उनके सुधार एवं प्रगति पर वे सतर्क रहे । "तीसरा सप्तक" से लेकर "समकालीन कविता" तक के विस्तृत साहित्यिक माहौल में साही का कार्य यही रहा । मज़दूरों को संगठित करने के पीछे उनकी प्रगतिशील दृष्टि सक्रिय है । पर साही की विशेषता यह है कि कभी भी उन्होंने अपने विचारों को कविता पर थोपने का कार्य नहीं किया । मज़दूर-संगठन का कार्य अलग है तथा कवि-कर्म अलग । यह विशेषता बहुत कम ही कलाकारों में दिखाई देती है । निराला के भिक्षुक, तोड़ती पत्थर, कुकुरमुत्ता जैसी रचनाओं के सृजन के पीछे उनकी बदली हुई मानसिकता की झलक तो अवश्य है । नागार्जुन, त्रिलोचन, मक्तिबोध जैसी प्रतिभाओं में भी यही कमी दिखाई देती है कि उन्होंने अपने राजनैतिक विचारों को कविता में अभिव्यक्त करने का कार्य किया है । यह प्रतिबद्धता की समस्या है । यह विवाद का विषय भी है कि कवि को प्रतिबद्ध होना चाहिए या नहीं । नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध जैसे कवियों का अभिमत यह है कि कवि को प्रतिबद्ध होना ही चाहिए । इसलिए एक प्रकार से कविता या

साहित्य इनके लिए समाज सुधार का अस्त्र है । लेकिन साही इससे भिन्न है । वे यही मानते हैं कि अनुभव और कविता भिन्न है । सारे अनुभव कविता नहीं बनते । कुछ ऐसे अनुभव होते हैं जो विशेष क्षण में अपनी अद्वितीयता के कारण काव्य का विषय बन जाते हैं । इसलिए समाज और कविता का सीधा संबंध नहीं । काव्य सृजन के संदर्भ में कभी कभी सामाजिक एवं वैयक्तिक अनुभवों का जिक्र तो हो जाता है वह आनुषंगिक मात्र है, उसमें कोई दोष नहीं । लेकिन जान बूझकर जब कविता को प्रचार का माध्यम बनाया जाता है तब वह सही कविकर्म नहीं बन पाता ।

समकालीन कविता के संदर्भ में भी कवि साही का यही दृष्टिकोण रहा है । साही के समय के भारत और आज के भारत में कोई बहुत बड़ा अन्तर तो नहीं है । उस समय भी समाज अनैतिकता एवं अत्याचारों का अखाड़ा ही था । शोषण शासक-वर्ग की छाप था उस सामाजिक अन्याय के विरुद्ध साही ने जो तीव्र संघर्ष किया था उसकी झलकें उनकी समकालीन कविताओं में देख सकते हैं । लेकिन ध्यान रखना चाहिए कि यहाँ भी कविता को उन्होंने एक अस्त्र के रूप में नहीं स्वीकार किया था । कविता या साहित्य के माध्यम से समाज को सुधारने के पक्ष में नहीं थे साही ।

साही के साहित्य का मूलमंत्र आस्था है । वर्तमान अनास्थाजनक परिस्थितियों से निरंतर संघर्ष करते हुए उन्होंने आस्था-वादी दृष्टिकोण को ही अपना लिया था । एक अच्छे भविष्य पर विश्वास रखनेवाले कवि थे साही । वर्तमान संकटापन्न स्थिति से निराश हुए बिना, उसका सामना करते हुए एक अच्छे भविष्य को गढ़ने की आस्था रखनेवाला कवि है साही । इसलिए साही के विचारों एवं साहित्यिक मान्यताओं में आस्था का स्वर बिलकुल मुखरित हुआ है ।

आलोचना के क्षेत्र में भी साही का अपना अलग व्यक्तित्व दिखाई देता है । वे पिष्टपेषण के विरुद्ध थे । परंपरागत आलोचना पद्धति को छोड़कर नए ढंग से कवियों एवं साहित्यिक मान्यताओं पर वे अपना अभिमत प्रकट करते थे । "लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस" शीर्षक लेख तथा "जायसी" नामक ग्रंथ इसके लिए पर्याप्त प्रमाण है । "जायसी" में साही ने एक नए "जायसी" को हमारे सामने प्रस्तुत किया है जिससे पाठक-गण अभी तक अपरिचित थे । जायसी में निहित कवि-प्रतिभा तथा मानवीयता के उच्च विचारों को प्रकाश में लाने का कार्य साही की आलोचना पद्धति की विशेषता है । उस समय तक जनमानस में जायसी मुख्यत: भक्त एवं संत थे । इस प्रचलित एवं रूढ़ मानसिकता से असन्तुष्ट आलोचक-मन की प्रतिक्रिया का परिणाम है "जायसी" शीर्षक ग्रंथ । उसी प्रकार

लघुमानव संबंधी लंबा लेख । इस लेख ने नई कविता को ही नहीं आधुनिक हिन्दी कविता को ही नए ढंग से देखने, समझने एवं परखने के लिए विवश कर दिया था ।

काव्याभिव्यक्ति के संदर्भ में भी साही का दृष्टिकोण भिन्न रहा है । वे सरल एवं सहज अभिव्यक्ति के हिमायती थे । कविता को जटिल बनाए बिना अकृत्रिम भाषा एवं शैली में प्रस्तुत करना ही श्रेष्ठ है । आधुनिक युग में कुछ ऐसे कवि हुए है जिनकी कविता बोझिल है, जटिल है अस्पष्ट है । ऐसी कविता को वे कविता मानना ही नहीं चाहते । कविता स्पष्ट होनी चाहिए तथा सहज बोधगम्य भी । इसलिए साहित्य के क्षेत्र में प्रचलित सभी रूढ़ियों को तोडने का संघर्ष भी उन्हें अपने ऊपर लेना पडा ।

संक्षेप में साही की रचनायें युग बोध के दस्तावेज़ होने के साथ ही साथ अपनी प्रगतिशीलता के कारण काल-सीमा का उल्लंघन करने की क्षमता रखनेवाली हैं । अत: साही की रचनायें युग की माँग है, युग का सार्थक इतिहास हैं । पाठकों का सम्मिलित उनकी रचना की सार्थकता है । पाठक उनकी रचनाओं से दूर नहीं, सदा उसका अंग बनकर रहता है । उसकी समस्यायें कभी भी उन्हें पराये की नहीं लगती । अत: साही की रचनायें रचनाकार एवं पाठक के बोध का संवाद है । जाहिर है कि साही युग-जीवन के धड़कनों को रचना में विन्यस्त करनेवाला युग-द्रष्टा कलाकार अवश्य है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ - सूची

(क) विजयदेव नारायण साही की रचनायें

1. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
वाराणसी, 1958.

2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही
भारती भण्डार
इलाहाबाद, 1966.

3. साखी - विजयदेव नारायण साही
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली, 1983.

4. जायसी - विजयदेव नारायण साही
हिन्दुस्तान अकादमी
इलाहाबाद, 1983.

5. साहित्य और साहित्यकार का दायित्व - विजयदेव नारायण साही
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
इलाहाबाद, 1983.

6 छठवाँ दशक - विजयदेव नारायण साही
हिन्दुस्तान अकादमी
इलाहाबाद, 1987.

7. साहित्य क्यों ? - विजयदेव नारायण साही
प्रदीपन प्रकाशन
इलाहाबाद, 1988.

8. संवाद तुम से - विजयदेव नारायण साही
ज्ञानपीठ प्रकाशन
नई दिल्ली, 1990.

9. लोकतंत्र की कसौटियाँ - विजयदेव नारायण साही
हिन्दुस्तान अकादमी
इलाहाबाद, 1990.

10. वर्धमान और पतनशील - विजयदेव नारायण साही
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली, 1991.

11. आवाज़ हमारी जायेगी - विजयदेव नारायण साही
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, 1995.

(ब) संदर्भ ग्रन्थ

12. अस्मिता - डा. जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव
सं. जितेन्द्रनाथ पाठक
विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी

13. अस्तित्ववाद - डा. लालचन्द्र गुप्त
अनुपम प्रकाशन
पटियाला

14. अष्ठछाप काव्य की अन्तर्कथाओं का अध्ययन - डा. सरोज जैन
राधा पब्लिकेशन
नई दिल्ली

15. अलगाव दर्शन और साहित्य – डा. बैजनाथ सिंहल
मंथन पब्लिकेशन
रोहतक

16. अज्ञेय – विद्यानिवास मिश्र
राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली

17. आधुनिक हिन्दी के संदर्भ में – डा. गंगा प्रसाद विमल
भारत मिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया
नई दिल्ली.

18. आस्वाद के धरातल – डा. धनंजय वर्मा
विद्या प्रकाशन मन्दिर
दिल्ली

19. आधुनिक हिन्दी कविता – डा. जगदीश गुप्त
विद्याप्रकाशन मन्दिर
दिल्ली.

20. आस्वाद के आयाम – डा. रणवीर रांग्रा
जगतराम एण्ड सन्स
नई दिल्ली.

21. आधुनिकता और आलोचना – अम्बादत्त पाण्डेय
प्रेम प्रकाशन मंदिर
दिल्ली.

22. आद्य बिम्ब और नई कविता – कृष्ण मुरारी मिश्र
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली.

23. आलोचक और समीक्षायें - डा. सत्यप्रकाश मिश्र
विभा प्रकाशन
इलाहाबाद

24. आलोचना की नई तलाश - राघव प्रकाश
साहित्यागार
जयपुर.

25. आधुनिक हिन्दी कथाशिल्प - डा. मोहन अवस्थी
हिन्दी परिषद प्रकाशन
प्रयाग

26. आधुनिक काव्य में सौंदर्यबोध के विविध आयाम - डा. छोटेलाल दीक्षित
शबरी संस्थान
दिल्ली.

27. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - डा. कैलाश वाजपेई
आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली.

28. आधुनिक हिन्दी कविता और विचार - राजेन्द्र मोहन भटनागर
भारतीय ग्रन्थ निकेतन
नई दिल्ली.

29. एक साहित्यिक डायरी - गजानन माधव मुक्तिबोध
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
नई दिल्ली.

30. कविता के नये प्रतिमान - डा. नामवर सिंह
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली.

31. कवितान्तर – सं. जगदीश गुप्त
आराधना प्रेस
कानपुर.

32. कविता का जीवित संसार – अजित कुमार
अक्षर प्रकाशन
नई दिल्ली.

33. कविता की तीसरी आँख – प्रभाकर क्षोत्रोय
नाशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

34. कवि दृष्टि – अज्ञेय
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद.

35. कबीर – डा. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर
बंबई

36. कविता की लोक प्रकृति – डा. जीवन सिंह
अनामिका प्रकाशन
इलाहाबाद

37. कविता का अंत – सुधीश पचौरी
प्रकाशन संस्थान
नई दिल्ली.

38. कविता कालयात्रिक – डा. लक्ष्मी नारायण
प्रवीण प्रकाशन
नई दिल्ली.

39. कविता क्या है – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
संस्कृति प्रकाशन
अहमदाबाद

40. काव्य बिम्ब – डा. नगेन्द्र
नाशनल पब्लिशिंग हाऊस
दिल्ली

41. काव्य परंपरा और नई कविता की भूमिका – कमल कुमार
प्रेम प्रकाशन
दिल्ली.

42. चौथा सप्तक – सं. अज्ञेय
सरस्वती विहार
नई दिल्ली.

43. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – कमला प्रसाद पाण्डेय
रचना प्रकाशन
इलाहाबाद.

44. छायावादी काव्यधारा का शैली विज्ञान – डा. राज उपाध्याय
आशा प्रकाशन गृह
नई दिल्ली.

45. छायावादोत्तर हिन्दी कविता – डा. रमाकान्त शर्मा
साहित्य सदन
देहरादून

46. छायावादी काव्य का व्यावहारिक सौंदर्य शास्त्र – सूर्यप्रसाद दीक्षित
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद

47. तारसप्तक – सं. अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ
वाराणसी

48. तीसरा साक्ष्य – सं. अशोक वाजपेई
संभावना प्रकाशन
नई दिल्ली.

49. तारापथ – सुमित्रानन्दन पंत
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली.

50. दस्तावेज़ – जगदीश चतुर्वेदी
वसुन्तरा पब्लिकेशन
नई दिल्ली.

51. दूसरा सप्तक – सं. अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
वाराणसी

52 दिशान्तर – सं. परमानन्द श्रीवास्तव
विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
अनुराग प्रकाशन
वाराणसी

53. प्रसाद-निराला-अज्ञेय – डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद

54. फिलहाल – अशोक वाजपेई
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली.

55. नया सप्तक - सं. राकेश गुप्त
श्रीकुमार चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद.

56. नया हिन्दी काव्य - डा. शिवकुमार मिश्र
अनुसंधान प्रकाशन
कानपुर.

57. नए कवियों के काव्य शिल्प सिद्धान्त - दिविक रमेश
पराग प्रकाशन
दिल्ली.

58. नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र- मुक्तिबोध
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली.

59. नये पुराने परिवेश - डा. रामफेर त्रिपाठी
आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली.

60. नये कवि: एक अध्ययन - सन्तोषकुमार तिवारी
भारतीय ग्रंथ निकेतन
नई दिल्ली.

61. नई कविता सीमायें और संभावनायें - गिरिजाकुमार माथुर
नाशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

62. नई कविता का इतिहास - बैजनाथ सिंहल
संचय प्रकाशन
नई दिल्ली.

63. नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध – मुक्तिबोध
विश्वभारती प्रकाशन
नागपुर.

64. नई कविता स्वरूप और समस्यायें – जगदीश गुप्त
भारतीय ज्ञानपीठ
वाराणसी

65. नई कविता में वैयक्तिक चेतना – अवध नारायण त्रिपाठी
जवहर पुस्तकालय
मथुरा

66. नई कविता सिद्धांत और सृजन – नरेन्द्र देव वर्मा
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली.

67. नई कविता का प्रमुख हस्ताक्षर – सन्तोषकुमार तिवारी
जवहर पुस्तकालय
मथुरा.

68. नई कविता मे मूल्यबोध – शशि सहगल
अभिनव प्रकाशन
नई दिल्ली.

69. नई कविता के प्रतिमान – लक्ष्मीकांत वर्मा
भारती प्रकाशन
इलाहाबाद.

70. नई कवितायें एक साक्ष्य – रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद.

71. नई कविता में राष्ट्रीय चेतना - देवराज पथिक
कादम्बरी प्रकाशन
नई दिल्ली.

72. नई कविता के प्रबन्ध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन - डा. उमाकान्त गुप्त
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली.

5. नई कविता में मिथक - डा. राजकुमार
अंकुर प्रकाशन
दिल्ली.

74. नई कविता के परिप्रेक्ष्य - डा. परमानन्द श्रीवास्तव
नीलाभ प्रकाशन
इलाहाबाद

75. नई कविता - देवराज
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली.

76. मानव मूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
वाराणसी.

77. मुक्तिबोध रचनावली (भाग-5) - सं. नेमिचन्द्र जैन
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली.

78. मुक्तिबोध की काव्य-प्रक्रिया - अशोक चक्रधर
मैकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया
नई दिल्ली.

79. मुक्तिबोध युग चेतना और अभिव्यक्ति - डा. आलोक गुप्त
गिरनार प्रकाशन
गुजरात.

80. राग-विराग - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
लोकभारती प्रकाशन
नई दिल्ली.

81. राम मनोहर लोहिया - आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विचार - कृष्णचन्द ठाकुर
एस. चन्द एण्ड कंपनी
नई दिल्ली.

82. डा. लोहिया - व्यक्तित्व और कृतित्व - डा. राजेन्द्र मोहन भटनागर
किताब घर
नई दिल्ली.

83. समकालीन कविता का व्याकरण- परमानन्द श्रीवास्तव
शारदा प्रकाशन
दिल्ली.

84. समकालीन कविता और धूमिल - मंजुल उपाध्याय
अनामिका प्रकाशन
इलाहाबाद.

85. समकालीन कविता की भूमिका - विश्वंभरनाथ उपाध्याय
मंजुल उपाध्याय
मैकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया
नई दिल्ली.

86. सर्जन और संप्रेषण - सच्चिदानन्द वात्स्यायन
नाशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

87. समसामयिक कवियों में विसंगति- जगदीश नन्दिनी
दिनमान प्रकाशन
दिल्ली.

88. समकालीन लेखन एक वैचारिकी - डा. चन्द्रभान रावत
डा. रामकुमार खण्डेलवाल
नाशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

89. स्थानान्तर - रमेशचन्द्र शाह
सरस्वती प्रेस
इलाहाबाद.

90. सर्जन और भाषिक संरचना - रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद.

91. समकालीन हिन्दी कविता - अशोक त्रिपाठी
शारदा सदन
इलाहाबाद.

92. समकालीन हिन्दी कविता - डा. ए. अरविन्दाक्षन
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली.

93. समकालीन कविता में छन्द - सं. सच्चिदानन्द वात्स्यायन
नाशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

94. सप्तक काव्य - डा. अरविन्द
माकमिलन प्रकाशन
नई दिल्ली.

95. साहित्य का परिवेश – सच्चिदानन्द वात्स्यायन
नाशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

96. साहित्य विनोद – सं. अशोक वाजपेई
नाशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

97. साहित्य नया और पुराना – डा. विनयमोहन शर्मा
नाशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

98. साठोत्तर हिन्दी कविता परिवर्तित दिशायें – विजयकुमार
नाशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

99. समकालीन हिन्दी साहित्य – अलक्सान्द्र सेन्केविच
प्रकाशन संस्थान
नई दिल्ली.

100. हिन्दी नवलेखन – रामस्वरूप चतुर्वेदी
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
वाराणसी.

101. हिन्दी समीक्षा स्वरूप और संदर्भ – डा. रामदरश मिश्र
मेकमिलन कंपनी ओफ इण्डिया
दिल्ली.

102. हिन्दी आलोचना का इतिहास– भाखनलाल शर्मा
शब्द और शब्द
दिल्ली.

103. हिन्दी आलोचना के आधार स्तंभ - रामेश्वरलाल खण्डेलवाल
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली.

104. हिन्दी कविता का परिप्रेक्ष्य और नवगीत - डा. शंभुनाथ
संजय बुक सेंटर
वाराणसी

105. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डा. नगेन्द्र
नाशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

106. हिन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान - डा. बलबीर सिंह
लोकभारती प्रकाशन
नई दिल्ली.

107. Kavya Bhashayile Prasnangal - Desamangalam Ramakrishna
Kerala Bhasha Institute
Thiruvananthapuram.

108. Poetic vision Family Ethnicity writers freedom - K.L.Mohanavarma
Kerala Sahitya Academy
Trichur.

(ग) पत्र-पत्रिकायें

109. आलोचना (जन-मार्च 1984) - सं. नामवर सिंह
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली.

110. कल्पना - जून 1964 और जनवरी 1977 - जगदीश मित्तल
सुलतान बाज़ार
हैदराबाद.

111. दस्तावेज़ - अक्तूबर 1990 मार्च 1991 और अक्तूबर-दिसंबर 1994. - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी बेतियाहाता गोरखपुर.

112. धर्मयुग अक्तूबर 1981 और नवंबर 1982 - धर्मवीर भारती दक्षिण बंबई.

113. नया प्रतीक सितंबर 1978 - वात्स्यायन दरियागंज नई दिल्ली.

114. नई कविता 1960-61 - जगदीश गुप्त और साही इलाहाबाद.

115. पूर्वग्रह दिसंबर 1984 - अशोक वाजपेई भारत भवन भोपाल

116. मधुमती नवंबर 1995 और फरवरी 1996 - राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर.

117. लहर मई-जून 1975 - प्रकाश जैन मनमोहिनी महात्मा गाँधी मार्ग अजमेर

118. समकालीन भारतीय साहित्य जुलाई-दिसंबर 1983. - साहित्य अकादमी नई दिल्ली.

119. संवेतना सितंबर-अक्तूबर 1977- महीप सिंह शिवाजी पार्क दिल्ली - 26.